ओ३म

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च २०१४

वर्ष ४३ : अङ्क ५
दयानन्दाब्द : १९०
विक्रम-संवत : फाल्गुन-चैत्र २०७१
सृष्टि-संवत : १.९६.०८.५३.११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक: धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कमार
व्यवस्थापक : विवेक गप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७. नया बांस, मन्दिर वाली गली.
खारी बावली, दिल्ली-६
दरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- सत्य अर्थ का प्रकाश..... २
- वेदोपदेश ३
- महाशिवरात्रि पर्व ५
- कर्ता कौन ८
- कल्याण का प्रहार.... ११
- सनातन धर्म... १५
- हल्दी घाटी... १८
- स्वयं विषपान कर... २३

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकडा में प्राप्त करें।

सत्य अर्थ का प्रकाश करने वालों का काला झठ

'सत्यमेव जयते' हमारा राष्ट्रीय उद्घोष है। सत्य की महिमा हमारे समस्त धर्मग्रन्थों में प्रमुखता से है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने अपनी अमूल्य कालजयी कृति का नाम 'सत्यार्थ प्रकाश' रखा। उनका स्पष्ट आदेश है-'सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'

लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि आजकल वैदिक सिद्धान्तों का ढिंढोरा पीटने वाले भी सिद्धान्तों की धज्जिया उड़ाते नजर आते हैं। भोली-भाली जनता को यम-नियम का उपदेश देने वाले भी जब काला झूठ बोलकर/लिखकर समाज को गुमराह/भ्रमित करने का पाप/अपराध करते हैं तो बहुत पीड़ा होती है। कुछ दिन हुए सत्यार्थ प्रकाश के एक और नए प्रकाश का उदय हुआ है जहाँ तक प्रश्न है सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन का तो अनेक प्रकाशक इसे वर्षों से प्रकाशित कर ही रहे हैं, एक और ने भी कर दिया। यह कोई विशेष बात नहीं है। अब प्रश्न ये है कि क्या भ्रम फैलाकर प्रकाशित किया गया है। आडये. कछ बिन्द उन्हीं के शब्दों में जानते हैं-

1. सत्यार्थ प्रकाश मिलता ही नहीं था।
2. 120-120 रु० में मिलता था।
3. छोटी छपाई।
4. एकरूपता का अभाव।

हमारा विनम्र निवेदन है कि पिछले 130 वर्षों में समस्त संस्थाओं, समाजों, ट्रस्टों, व्यक्तियों और प्रकाशकों ने मिलकर जितना सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित किया है, उससे कहीं अधिक 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' ने अकेले अपने दम पर 40 साल में प्रकाशित किया है। अब तक हम 81 संस्करण निकाल चुके हैं। 10-20 हजार सत्यार्थ प्रकाश कोई भी कभी भी बिना अग्रिम भुगतान किए प्राप्त कर सकता है और 10-15 दिन का समय लेकर 1 लाख तक सत्यार्थ प्रकाश हम दे सकते हैं। अत: हमारा कहना है कि सत्यार्थ प्रकाश की अनपलब्धता का भ्रम फैलाना सर्वथा निराधार है और शरारतपूर्ण है।

हम यह जानना चाहते हैं कि क्या उनके प्रकाशन के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश की उपलब्धता सुनिश्चित हो गयी, वे कितना सत्यार्थ प्रकाश किस दर पर उपलब्ध करा रहे हैं। अब तक कितना सत्यार्थ प्रकाश उन्होंने छापा है। मेरी जानकारी के अनुसार तो जितना सत्यार्थ प्रकाश उन्होंने छापा है, उससे 2 गुना तो ट्रस्ट के सहयोग से दिल्ली सभा ने इस वर्ष प्रगति मैदान में आयोजित पस्तक मेले में केवल 10 रु. में वितरित किया है। वह भी गैर आर्यसमाजी जनता को।

अब दूसरे बिन्दु 120-120 रु. में सत्यार्थ प्रकाश मिलते थे। सवाल ये है कि किसने किस को दिए थे. यह स्पष्ट किया जाना चाहिए। शेष पष्ठ 27 पर

ओ३म

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सनना-सनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = परमेश्वरो भौतिकोऽग्निश्च।।** पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक। **ऋषभः स्वरः। धर्त्रमसीति मध्यस्याच्चीं त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।।**

पुनरग्निशब्देनोक्तावर्थावुपदिश्येते।।

फिर भी अग्नि शब्द से उक्त परमेश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म– अग्ने ब्रह्मं गृभ्णीष्व धरुणंमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं सजातवन्युपंदधामि भ्रातृव्यस्य वधायं। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं सजातवन्युपंदधामि भ्रार्तृव्यस्य वधायं। विश्वाभ्यस्त्वाशांभ्यंऽ-उपंदधामि चितं स्थोर्ध्वचिंतो भर्गणामङ्गिरसां तपंसा तप्यध्वम।।१८।।

पदार्थः–(अग्ने) परमेश्वर भौतिको वा **(ब्रह्म)** वेदम् **(गृभ्णीष्व)** ग्राहय गृह्णाति वा। **अत्र सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। हृग्रहोर्भश्छन्दसीति हकारस्य भकारः। (धरुणम)** धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **(असि)** अस्ति। **अत्र पक्षे प्रथमार्थे मध्यमः। (अन्तरिक्षम्)** आकाशस्थान पदार्थान। अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं वा। **अन्तरिक्षं कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा। निरु. 2।10।। (दृंह)** दृढीकुरु करोति वा **(ब्रह्मवनि)** वेदं वनयति तम् **(त्वा)** त्वाम् **(क्षत्रवनि)** राज्यं वनयति तम् **(सजातवनि)** समाना जाता विद्याः समानं जातं राज्यं वा वनयति येन तम् **(उपदधामि)** धारयामि **(धर्त्रम्)** धरति यत् येन वा। **वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोमः। स वाभिश्चतसृभिर्दिग्भिः स्तुते तद्यत्तमाह धर्त्रमिति प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। वायुर्वै सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वांणि भतान्यभयतः परिगहणाति।। श. 8।2।1।16।। अनेन प्रमाणेन धर्त्रशब्देन वायुरीश्वरश्च गृह्येते (असि)** अस्ति वा **(दिवम्)** ज्ञानप्रकाशं सूर्य्यलोकं वा **(दृंह)** सम्यग्वर्धय, वर्धयति वा **(ब्रह्मवनि)** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो वेदस्य विभाजितारम्। ब्रह्माण्डस्य मूर्तद्रव्यस्य प्रकाशकं वा **(त्वा)** त्वां तं वा **(क्षत्रवनि)** राजधर्मप्रकाशस्य विभाजितारं राजगुणानां दृष्टान्तेन प्रकाशयितारं वा **(सजातवनि)** समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् मूर्तान् जगत्स्थान् पदार्थान्वा वनयति=प्रकाशयति तम् **(विश्वाभ्यः)** सर्वाभ्यः **(त्वा)** त्वां तं वा **(आशाभ्यः)** दिगभ्यः। **आशा इति दिङ्नामसु पठितम्।। निघं. 1।6।। (उपदधामि)** उपदधाति वा सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा **(चितः)** चेतयन्ति=संजानन्ति ये ते चितः। **अत्र वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः, इति वार्तिकेन विसर्जनीयलोपः (स्थ)** भवथ भवन्ति वा **(ऊर्ध्वचितः)** ऊर्ध्वानत्कष्टगणान चेतयन्ति ते

मनुष्याश्चितानि कपालानि वा **(भृगूणाम्)** भृज्जन्ति यैस्तेषाम् **(अंगिरसाम्)** प्राणानामंगाराणां वा। **प्राणो वा अङ्गिराः।। श. 6।5।2।3।। अङ्गारेष्वंगिरा अङ्गारा अंकना अश्चनाः।। निरु 3।17।। (तपसा)** धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन तेजसा वा **(तप्यध्वम्)** तपन्तु तापयतु वा।। **अयं मंत्र श. 1।2।1।9-13 व्याख्यातः।।18।।**

प्रमाणार्थ—(गृभ्णीष्व) ग्राह्य गृह्णाति वा। यहां सर्वत्र पक्ष में व्यत्यय है तथा 'ह्यग्रहोर्भश्छन्दसि' इस वार्तिक से हकार को भकार आदेश है। **(असि)** अस्ति। यहाँ पक्ष में प्रथम पुरुष के अर्थ में मध्यम पुरुष है। **(अन्तरिक्षम्)** निरुक्त (2।10) में अन्तरिक्ष का अर्थ ''द्युलोक और पृथिवी-लोक के मध्य में है एवं पृथिवी तक अवस्थित है, अतः वह अन्तरिक्ष है'' किया है। **(धर्त्रम्)** शत0 (8।2।1।1।16) के अनुसार 'धर्त्रम्' का अर्थ वायु है। चारों दिशाएं उसकी स्तुति करती हैं इसलिए यह चतुष्टोम है। वह वायु इन चारों दिशाओं से स्तुति किया हुआ है इसलिए इसको 'धर्त्र' कहते हैं। 'धर्त्रम्' का अर्थ प्रतिष्ठा है, क्योंकि वायु ही उनके स्वरूप को धारण कर रहा है। वह ऋत्विक् वायु को ही प्रथम धारण करता है और वायु को ही बाद में। और वायु के द्वारा ही वह इन सब भूतों को दोनों ओर से ग्रहण करता है। इस शतपथ के प्रमाण से 'धर्त्र' शब्द से वायु और ईश्वर का ग्रहण होता है। **(आशाभ्यः)** 'आशा' शब्द निघं0 (1।6) में दिशा नामों में पढ़ा है। **(चितस्य)** यहां 'वा शर्प्रप्रकरणे खपरे लोपो वक्तव्यः' इस वार्तिक से विसर्ग का लोप है। **(अंगिरसाम्)** शत0 (6।5।2।3) के अनुसार 'अंगिरा' शब्द का अर्थ प्राण है। निरु. (3।17) के अनुसार 'अंगिरा' का अर्थ 'अंगारों में होने वाला' है। अंगार को अंगार इसलिए कहते हैं क्योंकि वे चमकते हैं और जहाँ गिरते हैं. उसी स्थान को चिन्हित कर देते हैं। इस मन्त्र की व्याख्या शत0 (1।2।1।9-13) में की गई है। 1।18।।

सपदार्थान्वयः – हे अग्ने परमेश्वर! त्वं धरुणं धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **असि। कृपयाऽस्मत्प्रयुक्तं ब्रह्म** वेदं **गृभ्णीष्व** ग्राह्य, **तथा अस्मास्वन्तरिक्षम्=अक्षयं विज्ञानं** अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं, वा **दृंह=वर्धय** दृढीकुरु।

अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि वेदं वनयति तं **क्षत्रवनि** राज्यं वनयति तं **सजातवनि** समाना जाता विद्या वनयति येन तं **त्वा** त्वाम् **उपदधामि** धारयामि।

हे सर्वधर्तर्जगदीश्वर। त्वं सर्वेषां लोकानां धर्त्रं धरति यद् येन वा **असि। कृपयाऽस्मासु दिवं=ज्ञानप्रकाशं दृंह** सम्यग्वर्धय **अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो=वेदस्य विभाजयितारं **क्षत्रवनि** राजधर्मप्रकाशस्य विभायितारं **सजातवनि** समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् वनयति प्रकाशयति तं **त्वा=त्वामुपदधाशामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा। **त्वां सर्वव्यापकं ज्ञात्वा विश्वाभ्यः** सर्वाभ्य **आशाभ्यः** दिग्भ्य **उपदधामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा।

हे मनुष्याः। यूयमथैवं विदित्वा चितः चेतयन्ति = संजानन्ति ये ते **ऊर्ध्वचितः (कपालानि)** ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याः **कृत्वा भृगूणाम्** भृज्जन्ति यैस्तेषाम् **अंगिरसाम्** प्राणानां **तपसा** धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन **तप्यध्वं=यथा तपन्त तथा तापयत**। **इत्येकोऽन्वयः।।**

भाषार्थ :– हे **(अग्ने)** परमेश्वर! आप **(धरुणम्)** सब लोकों को धारण करने वाले और तेजःस्वरूप **(असि)** हो, कृपा करके हमारी **(ब्रह्म)** वैदिक स्तुति को **(गृभ्णीष्व)** स्वीकार कीजिये, तथा हमारे **(अन्तरिक्षम्)** अन्तरात्मा में स्थित नाशरहित ज्ञान-विज्ञान को **(दंह)** बढाइये एवं दढ कीजिये।

शेष पष्ठ 14 पर

महाशिवरात्रि पर्व

(धर्मपाल आर्य, २ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७)

महाशिवरात्रि का पर्व जितना पौराणिक जगत् के लिए महत्वपूर्ण है उससे अधिक महत्वपूर्ण आर्य जगत के लिए है। पौराणिक जगत् की मान्यता है कि इस दिन के व्रत का विशेष माहात्म्य है। पुराणों की और पौराणिकों की बात पर विश्वास करें तो इस दिन जो व्रत, उपवास और अनुष्ठान को श्रद्धापूर्वक सम्पन्न करते हैं, उनको शिवजी न केवल साक्षात् दर्शन देते हैं, अपितु व्रत, उपवास और अनुष्ठान करने वाले की समस्त कामनाएँ भी पूर्ण करते हैं। हजारों वर्षों से यह क्रम चल रहा है लेकिन आज तक भी किसी को शिव ने दर्शन दिये हैं ऐसा नहीं सुना और शिव दर्शन के जैसे तौर तरीके अपनाए जा रहे हैं उनसे तो मुझे कभी भी शिवदर्शन की संभावना नजर नहीं आती इसके बावजूद हमारे समाज का एक बहुत बड़ा भाग अजीब सी संभावना और अजीब सी मृगतृष्णाओं के सहारे चलने की असफल कोशिश करता है। शिव दर्शन की चाह शंकर को पाने की इच्छा तो आदि काल से रही है। शिव को, शंकर को पाने के प्रयास स्त्रियों ने क्या, पुरुषों ने क्या, बुजुर्गों ने क्या, जवानों ने क्या, सतयुग में क्या, त्रेता में क्या, द्वापर में क्या, कलियुग में क्या, मन्दिर में क्या, मस्जिद में क्या, गुरुद्वारे में क्या, मठ में क्या, गिरजाघर में क्या, वन में क्या, उपवन में क्या सभी स्थानों पर हर समय होते रहे थे, होते रहे हैं तथा भविष्य में भी होते रहेंगे। हिन्दू क्या, मुसलमान क्या, ईसाई क्या, बौद्ध क्या, जैनी क्या, सिख क्या, पारसी क्या, राधा स्वामी क्या, कबीर पन्थी क्या, दादू पन्थी क्या, धन-धन सतगुरु क्या सभी शिव को, शंकर को पाने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन क्या इनमें से किसी ने असली शिव को, असली शंकर को प्राप्त किया? शायद नहीं क्योंकि असली शिव को, असली शंकर को पाने के प्रयासों में भी असलियत होनी चाहिए, तभी असली शिव को प्राप्त किया जा सकता है। नकली प्रयासों से, बनावटी उपासना से, नकली साधनों से कभी भी असली शिव को नहीं पाया जा सकता लेकिन आज कल यही देखा जा रहा है कि नकली प्रयासों द्वारा असली शिव को प्राप्त करने की अनधिकार कोशिश हो रही हैं नकली भगवानों (शिव) को असली शिव असली शंकर सिद्ध करने की कोशिश हो रही है। वो भी एक शिवरात्रि थी जिसमें भक्त शिव को पाने के लिए उपवास कर रहे थे, कीर्तन कर रहे थे, कुछ भक्तगण मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। कुछ साधक शिव प्रतिमा का पूजन कर रहे थे और शिव को पाने के लिए उपवास, कीर्तन, स्तुति, प्रार्थना, मन्त्रोच्चारण, शिव प्रतिमा पूजन और अनुष्ठान असंख्यों शिवरात्रियों तक होते रहे हैं और असंख्यों शिवरात्रियों तक होते रहेंगे वो शिव माहात्म्य कथा भी असंख्यों शिवरात्रियों तक सुनायी जाती रही है और सुनायी जाती रहेगी कि जो श्रद्धापूर्वक शिव का उपवास करेगा, जो उसके ध्यान में रहेगा, उसकी पूजा करेगा उसका भजन करेगा, शिव उसको साक्षात् दर्शन देंगे। पुजारियों, भक्तों के उपरोक्त वचन कहने, सनने में तो ऐसे लगते हैं, जैसे ये भाव मानों असली

शिव असली शंकर के प्रति हैं लेकिन ये भाव असली शिव के प्रति नहीं अपितु शिव की, शंकर की नकली शिव प्रतिमा के प्रति हैं। प्रश्न उठता है कि आपकी यह आस्था गुणवाची शिव या शंकर के प्रति है अथवा व्यक्तिवाचक शिव शंकर के प्रति है तो उत्तर मिलता है ये गुणवाचक शिव, व्यक्तिवाचक शिव तो हमारी समझ से परे हैं। हम पार्वती के शिव की, नन्दी के शिव की, भांग धतूरा पीने वाले शिव की, ताण्डव नृत्य करने वाले शिव की, सृष्टि को उत्पन्न करके, उसका पालन और प्रलय करने वाले शिव की, दुष्टों का दलन करने वाले शिव की उपासना कर रहे हैं। यह शिव प्रतिमा हमें दर्शन देकर अवश्य कृतार्थ करेगी। यह धारणा आजतक बनी हुई है। उक्त धारणा कुछ वैसी ही है, जैसे आजकल महेश झा (पूर्व नाम) बनाम श्री आशुतोष जी महाराज के भक्तगण उनके गहन समाधि में चले जाने के बाद प्रचारित करते रहे। आशुतोष जी 27-28 जनवरी से (लेख लिखे जाने तक) आज तक तथाकथित गहन समाधि की अवस्था मे हैं लेकिन उनके शरीर की जाँच करने डाक्टरों की टीम ने, पुलिस प्रशासन ने, कोर्ट ने और पंजाब सरकार ने क्लीनिकली डेड घोषित कर दिया है। उनका बेटा दिलीप कुमार झा अपने मृत पिता के पार्थिव शरीर को अपने पैतृक गाँव लखनौर में लाकर उनका अन्तिम संस्कार करना चाहता है। इसके बावजूद उनके कुछ भक्त इस धारणा को हवा दे रहे हैं और प्रचारित भी कर रहे हैं कि महाराज जी गहन समाधि की अवस्था में हैं और जैसे समाधि भंग होगी तो हम सबके बीच में जरूर आयेंगे और अपने पावन उपदेशों से अपने करोडों भक्तों को कतार्थ करेंगे। इससे भी दर्भाग्य की बात यह है कि उनके भक्तजन आशुतोष जी की तथाकथित गहन समाधि को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं। हमारे समाज में आस्था के मापदण्डों में आयी विकृतियों के कारण हमारी आध्यात्मिकता का ताना-बाना बुरी तरह से तहस नहस हो गया है इस कारण सच्चे शिव को, शंकर को पाने का उद्देश्य हाशिए पर चला गया है। हमारी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को पाखण्ड का ग्रहण लग गया है। यही कारण है कि सच्चे शिव को उसके तथाकथित भक्तों ने मूर्ति तक समेट कर रख दिया है। यही वो शिवरात्रि थी जिसमें मूलशंकर ने असली शंकर और नकली शंकर जानने का संकल्प लिया था, यही वो शिवरात्रि थी जिसमें एक युग पुरुष ने युग बदलने का संकल्प लिया था। यही वो शिवरात्रि थी जिसमें नकली शिव और असली शिव के साथ-साथ मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के अभियान का शुभारम्भ हुआ था। यही वो शिवरात्रि थी, जिसमें समग्र स्वाधीनता के लिए निर्णायक संघर्ष की भूमिका तैयार हो रही थी। इसीलिए मैं कह सकता हूं कि शिवरात्रि का महत्व आर्य जगत् के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यही वो शिवरात्रि थी जिसमें शंकर ने शंकर के मूल (वास्तविक स्रोत) को जानने के लिए समस्त सांसारिक सुख साधनों को तिलांजलि दे दी। शिवरात्रियां अब तक कितनी आयीं और कितनी ही भविष्य में आयेंगी। लेकिन यही शिवरात्रि क्यों इतनी महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में आचार्य कवि मेधाव्रत जी ने ठीक ही लिखा है कि

कियत्यो नो जाता जगति शिवरात्र्यो ननु पुरा,
कियदिभर्नाकारि प्रथितशिवरात्रिव्रतविधिः।

परं सा काऽप्यासीद् व्रतिवरजगन्मङ्गलकरी.
सवित्री ज्ञानानाममृतफलदात्री तव यते।

अर्थात् कितनी शिवरात्रियां आयीं. जिनमें भक्तों ने शिवरात्रि की व्रतविधि को सम्पन्न किया परन्तु हे व्रतिवर! आपकी शिवरात्रि हम सबको ज्ञान के अमृत का फल देने और संसार भर का कल्याण करने वाली है। अब हम सबकी यह सामूहिक जिम्मेदारी बन जाती है कि इस शिवरात्रि को संसार का कल्याण करने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को हम सच्चे शिव का सच्चा सन्देश देने वाली शिवरात्रि बनाएं। इस शिवरात्रि को वेदज्ञान की पावन गंगा बहाने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को राष्ट के लिए वरदान सिद्ध होने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को विश्व को आर्य बनाने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को पूरे संसार के लिए प्रेरणास्रोत बनने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को आस्तिकता का अलख जगाने वाली और पाखण्ड को समल नष्ट करने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को सच्चे श्वि का सच्चे शंकर का संदेश देने वाली शिवरात्रि बनाएँ। इस शिवरात्रि को अज्ञानता के अंधकार को दूर करने वाली शिवरात्रि बनाएँ. इस शिवरात्रि को समाज के सर्वांगीण विकास की शिवरात्रि बनाएँ. इस शिवरात्रि को ऋषियों द्वारा दिए गए वेद ज्ञान को प्रचारित. प्रसारित करने वाली शिवरात्रि बनाएँ। यदि हम इस शिवरात्रि को सही अर्थों में शिवरात्रि बना पाए तो यह महर्षि के प्रति. आर्यसमाज के प्रति. समाज के प्रति. राष्ट के प्रति. संस्कृति के प्रति. वैदिकधर्म के प्रति. हमारी सच्ची कृतज्ञता होगी। शिवरात्रि का शिव की रात्रि बनना या बनाना ये राष्ट की समाज की. युवाओं की आवश्यकता ही नहीं बल्कि परम आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि इस शिवरात्रि को हम सब सच्चे शिव की रात्रि. कल्याण करने वाली शिवरात्रि बनाने का सफल सामहिक प्रयास करेंगे।

"दयानन्द-सन्देश" के स्वामित्व आदि का विवरण

प्रकाशन का स्थान : २ एफ. कमलानगर. दिल्ली-११०००७
प्रकाशन की अवधि : मासिक
मद्रक : इरानियन आर्ट प्रिण्टर्स, गली कासिम जान. बल्ली मारान. दिल्ली-६
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
क्या भारतीय है ? : भारतीय
पता : २एफ, कमलानगर. दिल्ली-७
सम्पादक : राजवीर शास्त्री
क्या भारतीय है : भारतीय
पता : भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर. गाजियाबाद (उ.प्र.). पिन-201204
स्वामित्व : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, : २ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनसार ऊपर लिखा समस्त विवरण सत्य है।

मार्च २०१४ **धर्मपाल आर्य (प्रकाशक)**

कर्ता कौन?

(उत्तरा नेरुरकर. बंग्लौर. मो: ०९८४५०५८३१०)

जीवात्मा कर्मों का कर्ता होता है, और अपने कर्मों के अनुसार भोक्ता, यह प्रसिद्ध कर्मफल सिद्धान्त है। साङ्ख्य भी यही कहता है। अनेकों बार यह कहकर कि शरीर में भोग चेतन ही करता है, अन्तिम अध्याय में एक बड़ा ही स्पष्ट सूत्र आता है कि अहंकारकर्ता है, पुरुष (जीवात्मा) नहीं। अनन्तर पुनः एक सूत्र में कहा जाता है कि कार्यों की सिद्धि अहंकार कर्ता के अधीन है, न कि ईश्वर के। व्याख्याकारों ने इन सूत्रों को पुराने ढांचों में ही ढालने का प्रयास किया है। परन्तु क्या ये सूत्र कुछ और कह रहे हैं? कोई ऐसी बात जो इतनी गहन हो कि उसको अन्तिम अध्याय के लिए छोड़ दिया गया हो? कोई ऐसी बात जो कि सत्रकार के मन्तव्य के ही विरूद्ध प्रतीत होती हो?

पहले तो हम सांख्य के कुछ वे सूत्र देखते हैं जिनमें चेतन-शक्ति को ही कर्ता और भोक्ता कहा गया है-

भोक्तृभावात्।। 1।108।।- पुरुष (1।104 से अध्याहृत शब्द) के भोक्ता होने के कारण वह (परुष) सिद्ध है, अर्थात् प्रकृति में यह भाव नहीं है।

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात्।।1/139।।- जीवात्मा का कर्तृत्व चित्=बुद्धि की अत्यन्त समीपता के कारण होता है, क्योंकि वह बुद्धि से रंग-सा जाता है-बद्धि के लक्षण स्वयं में आरोपित करने लगता है।

दृष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम।।2/20 आत्मा दृष्टा है, इद्रियाँ करण है।

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्योभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्।। 3।58।।- जैसे ऊँट चन्दन को ढोता है, परन्तु अपने लिए नहीं, वैसे ही प्रधान (मूल प्रकृति) की सृष्टि दूसरे (जीवात्मा) के लिए होती है, क्यों वह स्वयं भोक्ता नहीं है (जीवात्मा ही भोक्ता है)।

इन सब में स्पष्टतः प्रकृति को कर्ता या भोक्ता न बताते हए. परुष अर्थात जीवात्मा को कर्ता और भोक्ता बताया गया है।

फिर अन्तिम अध्याय में कहा जाता है-

अहङ्कारः कर्ता न पुरुषः।। 6।54।।- अहंकार कर्ता होता है, न कि जीवात्मा।

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात्।। 6।55।।- चित् (बुद्धि=अहंकार, जिस प्रकार ऊपर दिए 1/139 में अर्थ किया गया था) तक भोग का अनुभव होता है. क्योंकि उसी ने कर्मों का अर्जन किया है।

निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्.कारधर्मा ह्येते।। 6/62।।- (जीवात्मा के) निर्गुण होने से, उसमें (भोग-रूपी सुख दुःख- 6/55 से अनवर्तित) असम्भव होने से. अहंकार के ही धर्म हैं।

अहंकारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वरधीना प्रमाणाभावात्।। 6/64।।- कार्यों की सिद्धि अहंकार-रूपी कर्ता के अधीन है, ईश्वर के अधीन नहीं, क्योंकि ईश्वर के कर्ता होने में कोई प्रमाण नहीं पाये जाते।

उपर्युक्त सूत्रों की संस्कृत के अनुसार ये सीधी, सरल व्याख्याएं हैं। इन सूत्रों की प्रसिद्ध व्याख्याएँ इस प्रकार हैं (प्रधानतया उदयवीर शास्त्रीजी की व्याख्या पर आधारित. जो स्वयं प्राचीन व्याख्याओं पर आधारित हैं)-

अहङ्कार कर्ता न पुरुषः।। 6/54।।- अहंकार कर्तृत्व आदि भावना का प्रयोजक है, केवल जीवात्मा नहीं। अन्तःकरण के सम्पर्क से आत्मा कर्तृत्व व भोक्तृत्व का अनुभव करता है। इनके अभाव में आत्मा केवल स्वानुभूति करता है।, वही अनुभूति जो उसको समाधि अवस्था में होती है। कर्तृत्व, भोक्तृत्व की भावना में आत्मा में कोई विकार नहीं आता।

चिदवसाना भक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात।। 6/55।।-

चित्=चेतन जीवात्मा तक भोग का अनुभव होता है, क्योंकि उसी ने कर्मों का अर्जन किया है। क्योंकि आत्मा कर्ता है, इसलिए वह भोक्ता भी है।

निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते।। 6/62।।- (जीवात्मा के) निर्गुण होने से, उसमें (धर्मा-धर्म) असम्भव होने से, ये अहंकार के ही धर्म हैं। 'अहङकार के धर्म' से यहां प्रकृति से सत्त्व, रज और तम गुण लिए जाते हैं। (इन 'धर्मों' का पूर्व सूत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वे शरीर के सड़ने के विषय में है। सड़ने को सत्त्व, रज और तम का धर्म नहीं माना जा सकता। मेरी ऊपर दी व्याख्या में मुख्य विषय 'चित में भोग की अनभूति' 6/55 से चला आ रहा है।)

अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वरधीना प्रमाणाभावात्।। 6/64।।- कार्यों की सिद्धि अहङ्कार से युक्त कर्ता के अधीन है, ईश्वर के अधीन नहीं, क्योंकि ईश्वर के कर्ता होने में कोई प्रमाण नहीं पाये जाते। (यहां 'अहङ्कारकर्ता' से 'अहङकार से यक्त कर्ता' अर्थ थोपे गए है।)

इन व्याख्याओं में हम देख सकते हैं कि सूत्र में शब्द बाहर से जोड़ने पड़े हैं। सूत्र तो सरलता से कुछ और कह रहे हैं। सूत्रकार के अर्थों को समझने का प्रयास करते हुए, हम पाते हैं कि, वस्तुतः, सत्रकार ने ये ही बात कुछ और सूत्रों में भी दी है-

निर्गुणत्वात्र चिद्धर्मा।। 1/111।।- निर्गुण होने के कारण, जीवात्मा 'चित्' के धर्म वाला नहीं हे। यहाँ भी सब मानते हैं कि 'चित्' का अर्थ उपर्युक्त 1/139 के समान, चेतनता नहीं, अपितु बुद्धि या अहङ्कार है। सो, बुद्धि के गण जीवात्मा में नहीं पाए जाते। वह तो निर्गण है।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः।। 2/34।।- अन्तःकरण- चित्त की (और उसके कारण इन्द्रियों की) पाँच प्रकार की क्लिष्ट व अक्लिष्ट वृत्तियों से निवृत्ति हो जाने पर, राग व द्वेष भी शान्त हो जाते हैं, और जीवात्मा 'स्वस्थ' - अपने में स्थित हो जाता है, जैसे-

कसमवच्च मणिः।। 2/35।।- जिस प्रकार एक बिल्लौर के पीछे रखे फूल से बिल्लौर में रंग दिखने लगता है। यह एक सुन्दर और सुस्पष्ट उपमा है। फूल बिल्लौर से भिन्न है, उससे अलग रखा है, परन्तु उसका रंग-बिना छुए-बिल्लौर में आ जाता है। फूल के हट जाने पर. पुनः बिल्लौर का स्व-स्वरूप स्पष्ट दिखने लगता है।

वस्तुतः, इसी उपमा से हम आत्मा और चित्- अहंकार का सम्बन्ध समझ सकते हैं। जीवात्मा तो निर्गुण व निर्विकार है- बिल्लौर की भांति। अहंकार वह प्राकृतिक विकार है जिसके कारण वह शरीर में अहम्भाव करने लगता है- फूल के रंग को अपना रंग समझने लगता है। अपने को कर्ता और भोक्ता समझने लगता है।

पहले, भोक्ता को समझते हैं। जब हम किसी भी वस्तु का भोग करते हैं- आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, त्वचा से छूते हैं- तो हमारा शरीर ही देख, सुन व छू रहा होता है। उस देखने आदि को हम अपने में चित्रित पाते हैं। इस विषयों से शरीर में ही सुख-दुःख की भावना उत्पन्न होती है। जलेबी खाने पर, आत्मा को रस नहीं पहुँचता, शरीर को ही मिलता है। परमात्मा ने उस अनुभूति को सुख के रूप में बुद्धि में स्थापित कर दिया है। कुछ अनुभूतियाँ हमारे वातावरण से भी प्रभावित होती हैं, जैसे भारतीयों को मिर्च पसन्द आती है, विदेशियों को प्रायः नहीं। मिर्च का स्वाद है तो कष्टदायक ही, लेकिन हम बचपन से उसको अच्छा मानते आए हैं, सो हमें सदा ही अच्छा लगता है। बच्चे को मिर्च दें तो वह उसे थूक देगा। बड़ों की देखा-देखी वह उसे खाने लगता है। ऐसे ही मदिरा, आदि का सेवन। अब, जब जलेबी का कोई भी अंश जीवात्मा को मिल नहीं रहा, तो वह क्यों प्रसन्न होता है? यह अहंकार का कमाल है। इसी प्रकार कष्ट भी शरीर को प्राप्त होते हैं, आत्मा को नहीं। जो आपके शरीर को चोट लगती है, तो शरीर की दर्द-नाड़ियां आपको बताती हैं कि यह बात शरीर के लिए अच्छी नहीं है- दुःख है। आपको तो वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ! तो अगली बार जो आप चोट से बचेंगे, वह आपकी इच्छा नहीं होगी. अपित शरीर की इच्छा होगी।

इस प्रकार सुख-दुःख की वासनाएँ हमारे चित्त को चित्रित कर देती हैं- फूल में रंग भर देती हैं। पुनः, शरीर हमें उन अनुभवों की पुनरावृत्ति (राग) या उनसे दूर भागने (द्वेष) की ओर प्रवृत्त करता है। ये इच्छाएँ हमें अपनी प्रतीत होती हैं। सो, हमारा सारा जीवन उनकी पूर्ति में निकल जाता है। यह हमारा कर्तापन है। सत्य है कि शरीर को किसी भी दिशा में हम प्रेरित करते हैं। परन्तु जब वह दिशा ही शरीर से प्रेरित हो. तब वास्तविक कर्ता तो शरीर ही हुआ।

फिर भी, चित् चेतन तो है नहीं। सो, तलवार के समान उसको करण ही मानना चाहिए, ऐसा संशय किया जा सकता है। और कुछ इच्छाएँ तो जीव में ही हो सकती हैं, जैसे शरीर से मक्ति प्राप्त करने की इच्छा। तो इसको कैसे समझें?

सो, तलवार और शरीर में यह भेद है कि, तलवार में इतनी सी चेतन शक्ति नहीं है कि वह आपको बता सके कि आपको उससे सिर काटना चाहिए कि आलू। शरीर में बुद्धि, मन, आदि 'चित्' इसीलिए कहे जाते हैं कि वे आपको सूचनाएं पहुँचाते हैं और अनुभूति को अच्छे-बुरे में बाँटते भी हैं। दर्द का कष्ट होना, वास्तव में, शरीर बताता है, और ऐसे ही सुन्दर दृश्य का सुख। आत्मा के लिए ये निरर्थक ही हैं। इसका एक अन्य उदाहरण है- जब हम गहरी नींद में ब्रह्मानन्द में लीन होते हैं, और बिल्कुल भी उठना नहीं चाहते हैं, तब यदि कोई उच्च स्वर होता है, हम अनायास सोते से उठ जाते हैं। यदि हममें उस समय चेतनता होती तो हम सम्भवतः सोते ही रहते। परन्तु, परमात्मा ने शरीर में एक खतरे की घण्टी लगा दी है, जो हमको चिताती है कि शरीर के ऊपर कुछ संकट है, अब उसका सोना ठीक नहीं। इस प्रकार अहंकार हमें उठाता है. हम नहीं उठते! और. वास्तव में, शरीर ही उठता है!

दूसरे, शरीर से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा जो जीव करता है, वह शरीर के कारण होती है। जो शरीर न हो, तो उससे मुक्ति की इच्छा कैसे हो? इस सीमा तक यह शरीर पर निर्भर है। तथापि. यह इच्छा विवेक-जनित है, और हममें ही होती है। जब हम शरीर को अपने से भिन्न समझने लगते हैं, तब ही हम उसके बन्धन से छूटना चाहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर से मिलने की इच्छा भी हमारी अपनी होती है, शरीर की नहीं। इन इच्छाओं की प्राप्ति में हमें शरीर से अपने को अलग करना पड़ता है- समाधि लगानी पड़ती है। अर्थात् सभी शारीरिक, वाचिक और मानसिक कर्मों को रोकना पड़ता है। इससे भी स्पष्ट है कि कर्म शरीर के कारण, शरीर से प्रेरित, शरीर के द्वारा और शरीर के लिए होते हैं। वास्तव में, अहंकार ही कर्ता और भोक्ता है। अब यदि आप पुनः ऊपर दिए सत्रों को पढेंगे. तो आपको सब के अर्थ स्पष्ट दिखेंगे।

इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जो हम नित्य-प्रति भाग-दौड़ करते रहते हैं, वह वस्तुतः अधिकतर निरर्थक है। उसमें अहम्भाव उत्पन्न करने में हमारा कोई उपकार नहीं है। तथापि जब तक हममें विवेक नहीं उत्पन्न होता, जीवन का व्यापार तो अहम्भाव पर ही निर्भर है, और हमें उसे नहीं छोड़ना चाहिए। जीने के लिए ये सभी क्रियाएँ आवश्यक हैं। वस्तुतः, विवेक उत्पन्न करने के लिए किए गए कर्म ही, जैसे- मोक्षपरक ग्रन्थों का पढ़ना, अर्थपूर्वक ओम् का जप, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना- हमारे अपने लिए हैं। जिस दिन हममें विवेक उत्पन्न हो जायेगा, सब प्रकार के कर्म स्वतः 'निष्काम' हो जायेंगे- जीवन बनाए रखने के लिए या फिर परोपकार के लिए हो जायेंगे।

हमारे साधारण जीवन में हमें स्वयं को ही कर्ता मानना चाहिए। हमारे अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार हमें सुख-दुःख प्राप्त होगा, यह जानकर अपने कर्तव्यों में लगना चाहिए। परन्तु, जिसे मोक्ष प्राप्त करना है, उसके लिए प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक अनुभूति के यथार्थ को समझना आवश्यक है। उसके लिए शरीर की भलाई और अपनी भलाई में भेद करना अनिवार्य है। इसलिए यह गूढ़ विषय कपिल मुनि ने अन्त में रखा- जो चाहे वह समझ ले. जो न समझे सो छोड दे।

❑ ❑

'कल्याण' का प्रहार-बासी कढ़ी में उबाल जैसा (2)

(राजेन्द्र 'जिज्ञास' वेद सदन. अबोहर-152116)

हमें सूचना मिली है कि किसी मुसलमान ने जिहादी जोश से उत्तराखण्ड में आई भीषण बाढ़ में मन्दिर ध्वस्त हो जाने तथा देव मूर्तियों, भगवानों तक के बह जाने और सहस्र व्यक्तियों के मृत्यु का ग्रास बनने पर नेट पर हिन्दुओं के भगवान की खिल्ली उड़ाई है। 'कल्याण' मासिक तथा समस्त सनातन धर्मी मूर्ति मण्डन ने यह वार सहा। चुप्पी तोड़ी नहीं। यह इनका दुस्साहस कि बिना किसी प्रकरण के अकारण ही कल्याण में आर्य समाज पर मूर्ति पूजा की आड़ में प्रहार कर दिया। ये भाई मूर्तिपूजा के पक्ष में कुछ लिखें हमें आपत्ति नहीं। महात्मा दादू जी तथा महाराष्ट्र के कई सन्तों ने भी मूर्तिपूजा का निषेध किया है। उनके विचारों और आक्षेपों का भी कभी खण्डन करें।

सबसे चुभने वाली बात तो यह रही कि आर्यसमाज के निर्भीक धर्मवीर शास्त्रार्थ महारथियों का कल्याण के मूर्तिपूजक ने कृतघ्न हृदय से क्रूर उपहास उड़ाया है। दिल्ली के शिव मन्दिर के सत्याग्रह में हमारे शास्त्रार्थ महारथी वेद व्यास जी ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। हम मूर्तिपूजक नहीं परन्तु तुम्हारे अस्तित्व व मन्दिरों की रक्षा के लिये हम सदा अड़ते और लड़ते रहे। 'कल्याण' के लेखक श्री अर्चन का ज्ञान असीम होगा परन्तु अपनी नाक से आगे उनको कुछ भी दिखाई नहीं देता।

उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि आर्य सत्याग्रह सन् 1939 की एक मांग मन्दिरों का नवनिर्माण और जीर्णोद्धार भी थी। तब निज़ाम हैदराबाद के जिहाद का पहला शिकार हमारे शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्दजी देहलवी थे। वे न डरे, न दबे और न झुके। उस सत्याग्रह में हमारे शास्त्रार्थ केसरी ठाकर अमरसिंह भी कारागार की काल कोठरी में बन्द किये गये। सत्याग्रह के सर सेनापति स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज स्वयं एवं शास्त्रार्थ महारथी तथा शास्त्रार्थ महारथियों के गुरू और निर्माता थे। उदासी सम्प्रदाय के देशभर में (काशी में भी) कई आश्रम व डेरे हैं। उदासी मूर्तिपूजा नहीं मानते। उनका तो उपहास आपने उड़ाने की हिम्मत नहीं दिखाई। आप सनातन धर्म के दर्पण में ही अपनी आकृति कभी देख लिया करें। सनातनधर्मी दिल्ली में कभी भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा निकाल रहे थे। सामने से एक मुसलमान बी. ए. पास आ रहा था। उसने भगवान की मूर्ति पर आकृति पर एक प्रश्न कर दिया श्री पं० गंगाप्रसाद शास्त्री (सनातनी विद्वान् नेता) उस युवक को निरुत्तर न कर सके। सड़क के किनारे वाद-विवाद चल रहा था। कुछ ही देर में सामने से पं० रामचन्द्र जी देहलवी को आता देखकर पं. गंगाप्रसाद जी की जान में जान आई। पं० रामचन्द्र जी देहलवी से विनती की कि इस मियाँ के प्रश्नों का उत्तर देकर इसे सन्तुष्ट कीजिये। दो चार मिनटों में वह युवक देहलवी जी के विचार सुनकर तृप्त सन्तुष्ट होकर चला गया। यह प्रसंग देहलवी जी प्रायः सुनाते रहते थे।

हम फिर पूछते हैं कि आपने 'आदर्श पुरूष के ध्यान की कल्पित कहानी गढ़कर अपने पाठकों को तो रिझा लिया तनिक हमारी बात का दो टूक उत्तर दें कि कल्याण में कभी छपे चित्र में श्री कृष्ण जी को 'ध्यानावस्थित' दिखाया गया है, कृष्णजी किस के ध्यान में आँखें बन्द किये बैठे हैं? सामने न आपके गणेश जी की मूर्ति है और न शिवलिङ्ग रखा है। इस गुत्थी को सलझा दें। यह चित्र हमने सम्भाल कर रखा है।

कहानी अच्छी गढ़ी- आपने अपनी बिना पंखों की कल्पना से उड़ते हुए पक्के आर्य समाजी को तिलकधारी मूर्तिपूजक बना दिया। हम इसके लिए आप को बधाई देते हैं। आपको अति शीघ्र आपकी गप्प मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी का निर्देशक बनने का सौभाग्य प्राप्त हो। हमारी कामनायें स्वीकार करें परन्तु यह तो बतायें कि सनातनधर्म कालेज लाहौर के आपके प्रिंसिपल रामदास मूर्तिपूजा छोड़कर नमाजी कैसे बन गये? उनका ध्यान क्यों न लगा? हमारे शास्त्रार्थ महारथियों की कपा से वह शद्ध होकर पुनः रामदास बनवाया।

महोदय गुजरात के एक पर्व न्यायाधीश और शिक्षा जगत के उपकुलपति The Art of Life in Bhagwadgita पुस्तक में लिखते हैं कि भारत में वेद तथा उपनिषद् काल में मूर्तिपूजा नहीं थी। कहिये! उनके इस कथन का क्या उत्तर है? महोदय! डॉ० सुरेन्द्र शर्मा जी बंगा ने कान्ति मासिक (जमायते इस्लामी का मासिक) में समय-समय पर सनातन धर्म की- मनुस्मृति आदि की धज्जियाँ उड़ाई हैं। आपने कभी कान्ति के किसी लेख का उत्तर दिया?

यह तो पं० लेखराम जी शास्त्रार्थ महारथी के वंश को गौरव प्राप्त है कि हमने मनुस्मृति की भी रक्षा करके दिखाई है। अब उनके हृदय में वेद की विचारधारा का प्रकाशक अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश अपना स्थान बना चका है।

आप गंगासिंह को मूर्तिपूजक बनाने की डींग हाँक रहे हैं। क्या आपको पता है कि स्वामी सर्वदानन्द की कोटि का संन्यासी कभी मूर्तिपूजक था। विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक गंगाप्रसाद उपाध्याय कभी मूर्तिपूजक थे। पं० रामचन्द्र देहलवी, पं. शान्तिप्रकाश, स्वामी वेदानन्द जैसा शास्त्र मर्मज्ञ संन्यासी कभी घोर मूर्तिपूजक था। 'दो इस्लाम' पुस्तक का विचारशील मुस्लिम लेखक रक्तरोदन करते हए लिखता है कि चारों वेदों के बीस सहस्र मन्त्रों में केवल एक ईश्वर की पूजा का विधान है। वेद में न पेड़ पूजा है, न नदी पूजा है और न पशु पक्षी की पूजा का विधान है। न जाने इस ब्राह्मण का ईश्वरतेर पजा से पेट ही न भरता।

अर्चन जी के सनातन धर्म ने मनुष्य को भगवान् बना दिया। भगवान् को मनुष्य बना डाला। कहीं सिर पशु का तो कही धड़ नारी का। न जाने भगवान् के साथ यह क्यों छेड़छाड़ करते रहते हैं? अर्चन जी का वाक्छल तो देखियेः- "हम मूर्तिपूजक भी मूर्ति को प्रतीक ही कहते हैं।" यह कथन एक महाझूठ है। मूर्ति को सुलाया जाता है। नहलाया जाता है। कपड़े गर्मी के सर्दी के अलग दिये जाते हैं। जागो मेरे शिवजी भोलेनाथ! घण्टी बजा-बजा के जगाया जाता है। भोग नित्य लगाया जाता है। प्रतीक पर चढ़ावे तो चढ़ते ही हैं। करोड़ों रुपये के सिंहासन व मुकुट तक भेंट किये जाते हैं। भगवान् उद्योगपतियों के साथ स्पर्धा कर रहे हैं। कौनसा भगवान् अधिक सम्पत्तिशाली है? सिद्धि विनायक, साईंबाबा, सत्य साईंबाबा या तिरुपति के वैंकटेश्वर जी?

क्या प्रतीकों को भूख, सर्दी, गर्मी, प्यास लगती है?

ईश्वर का उपहास आपने यहाँ तक उड़ाया है कि हम तो पढ़कर दंग रह गये कि पुरी के भगवान् जगन्नाथ जी को आप प्रतिवर्ष पन्द्रह दिनों तक रोग ग्रस्त घोषित करते हैं। आपको कुछ तो लज्जा आनी चाहिये कि आप आनन्द स्वरूप, परमानन्द, सच्चिदानन्द भगवान् को इतने दिन रोगग्रस्त करके दुःख देते हैं। एकेश्वरवादी तो दुःख में सच्चिदानन्द भगवान् से कष्ट निवारण की प्रार्थना करता है और आप उसके रोगी होने का प्रतिवर्ष ढोल पीटते हैं।

वातावरण की शुद्धि के लिये शास्त्रोक्त यज्ञ-हवन का करना-कराना छोड़कर मूर्तिपूजा की आड़ में वायुमण्डल की शुद्धि के लिए धूप बत्ती, चन्दन, दीपक सब का बखेडा करना आप का सनातन धर्म बन गया।

क्या कहना कल्याण के आर्यसमाज द्वेष का। "आर्य समाज से सबका त्यागपत्र दिया जा चुका है" गंगासिंह कल्पित तिलकधारी "अब पक्के पजारी हो गये हैं।" इस पर हम यही कहेंगे :-

'दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है।'

हमारी तो आप सुनेंगी नहीं। सनातन धर्म सभा के नये संस्करण विश्व हिन्दू परिषद् के तोगड़िया जी, अशोक जी से हिन्दू धर्म तजकर विधर्मी बने तिलकधारियों के भी आंकड़ें ले लीजिये। यह चर्चा करते हुए हमारा दिल बहुत दुखेगा। जाति के दीन लाल भूखें मर गये आप पत्थरों को भोग लगाते रहे। कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा-भानमति ने कुनबा जोड़ा। मूर्तिपूजा से, निराकार से, शून्य से, गुमसुम से, ध्यान-प्रतीक और तीर्थ यात्रा सब विषय लेकर अर्चन जी अपने पाठकों को भ्रमित करने में सिद्धहस्त निकले। इन जैसे पक्के तिलकधारी सनातनधर्मी को कौन समझा सकता है। काशी में दर्शन भी तो पढ़ाये जाते हैं। इन्हें कौन बताये समझाये कि इतना विषयान्तर होना बहुत बड़ा दोष है। कबीर जी, गुरु गोविन्द सिंह आदि के साहित्य में तीर्थ यात्रा पर उनके विचार पढ़ लीजिये। मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, काशी, गंगा, सागर आदि तीर्थों पर जाकर आंखें खोलकर देख लीजिये तिलकधारी कितने पवित्रात्मा बन गये। हम तो इतना ही जानते हैं कि देश भर में सबसे बड़े ठग को लोग 'बनारसी ठग' कहकर धिक्कारते हैं। इससे तीर्थ यात्रा का मर्म हमारी समझ में आ गया।

पाप के फल से बचने के लिए तीर्थयात्रा- आपकी तीर्थयात्रा का प्रयोजन मानव मन की शुद्धि तथा किसी का सुधार नहीं है। गीता की रट लगाते समय तो आप शोर मचाते हैं कि कर्म करना हमारा अधिकार फल तो प्रभु ही देता है। पाप का फल तो भुगतना ही पड़ता है। केरल में सनातन धर्म नर्कला में सागर को पाप नाशक बताता है। पाप के दःख से बचने के लिए कोई काशी और कोई हरिद्वार तथा यमुना में स्नान करके पाप का फल कटवाता है। पाप से बचने का सन्देश उपदेश न देकर आप पाप के फल से बचने के टोटकों का प्रचार करते हैं। यही आपका सनातन धर्म है।

ईश्वर एक है- सदा से है- वह एक रस है- ईश्वर एक है सदा ही एकरस रहता है। न मरता है न पैदा होता है। यह गीता प्रेस की 'बालों की बातें' पुस्तक में पढ़लें। आप एक समय में दो दो अवतार मानते रहे। आपके एक मोटे से तिलकधारी बाबा ने एक बार घोषणा की थी कि एक ही बार पहले एक समय में दो अवतार हुए थे और अब फिर बाबा रामदेव और आचार्य बालकृष्ण एक ही समय में राम और कृष्ण दो अवतार आये हैं। खूब ताली बजी। इसे सनातन धर्म की जीत मानो अथवा कुछ और हम तो इसे ईश्वर, वेद, शास्त्र, ऋषि मुनियों, श्री राम कृष्ण की निन्दा ही मानते हैं। शान्त मन से इस पर विचार कीजिये। अपनी बालों की पुस्तक भी पढ़ लेना।

सनातन धर्म है क्या?- महोदय आपको सनातन धर्म की चिन्ता बहुत सताती है। आपने एक कट्टर पक्के आर्यसमाजी गंगासिंह को जो आपके कथनानुसार पहले ही सदाचारी धर्मात्मा था- को तिलकधारी मूर्तिपूजक बना दिया। जम्मू कश्मीर से कन्याकुमारी तक और असम से लेकर गुजरात तक करोड़ों लोग बसते हैं जो परकीय मतों के मानने वाले कट्टरपंथी हैं। इनमें से किसी एक को कभी आपने तिलकधारी सनातन धर्मी बनाने की हिम्मत दिखाई?

कृपया लगे हाथ यह तो बता दें कि आपका सनातन धर्म है क्या?

1. कर्म फल सिद्धान्त को मानना सनातन धर्म है तो गंगा स्नान से पाप को धल जाना भी क्या सनातन धर्म है?

2. काली कोलकाता वाली को मानने वाले बकरे

काटते हैं। नेपाल में भैंसे कटते हैं। यह सनातन धर्म है तो योग दर्शन के यम नियम को भी सनातन धर्म मानना क्या ठीक है?

3. सन्त तुकाराम लिखते हैं कि सत्य कर्मों के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। वेद, उपनिषद्, दर्शन ग्रन्थ आदि सद्ज्ञान व सत्कर्मों के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं मानते परन्तु तीर्थ यात्राओं पर आने वाले करोड़ों लोग, गंगा, यमुना में डुबकी लगा कर मोक्ष प्राप्ति के लिये यह कर्मकाण्ड करते हैं। सनातन धर्म क्या है? ये दोनों परस्पर विरोधी बाते हैं।

4. वेद में यह सिद्धान्त की अनूठी देन है कि 'मेरे दायें हाथ में कर्म है और बायें हाथ में विजय है।' विश्व-इतिहास इसकी सत्यता का साक्षी है परन्तु आज सनातन धर्मी तिलकधारी मूर्तिपूजक यत्र तत्र मन्नत मांग कर कामनायें पूरी करवाने के लिये देश भर में भटक रहे हैं। आप स्पष्ट करें सनातन धर्म क्या है? परुषार्थ तथा दर्शन परस्पर विरोधी हैं।

5. आप परमात्मा को अपना माता, पिता बन्धु सखा मानते हैं प्रभु अंग संग है सर्वव्यापक यह भी मानते हैं फिर तो भक्त और भगवान् का सीधा सम्बंध है। बीच में बिचौलियों का. गरू की अनिवार्यता भी क्या सनातन धर्म है?

6. सनातन धर्म जगत् को मिथ्या मानता है। जीव की सत्ता भी नहीं मानता फिर 'जगतगुरु- शब्द का क्या अर्थ? आपके शंकराचार्य किसके गुरु हैं? न तो जगत् है और न जीव है और न प्रकृति। भक्ति का योग का सनानत धर्म में क्या स्थान हआ? यह कैसा सनातन धर्म?

7. सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है। सनातन धर्म का यह मत है। मुक्ति, मोक्ष, भक्ति, भजन की बात भी सनातन धर्म करता है। कल्याण ने एक भक्त अंक कभी निकाला था। जब सत्ता ही एक ब्रह्म की है फिर भक्त कहाँ से आ टपके? सनातन धर्म क्या है।

❑ ❑

पृष्ठ 4 का शेष

मैं **(भ्रातृवयस्य)** शत्रु के **(वधाय)** विनाश के लिए **(ब्रह्मवनि)** वेद को प्रकाशित करने वाले **(क्षत्रवनि)** राज्य को बढ़ाने वाले **(सजातवनि)** सब विद्याओं को समान रूप से सबके लिए प्रदान करने **(त्वाम)** आपको **(उपदधामि)** धारण करता हूँ।

हे सबको धारण करने वाले जगदीश्वर! आप लोकों के **(धर्त्रम्)** धारण करने वाले **(असि)** हो, कृपा करके हमारे **(दिवम्)** ज्ञान प्रकाश को **(दृंह)** भली भाँति बढ़ाइये। मैं **(भ्रातृव्यस्य)** शत्रु के **(वधाय)** हनन के लिए **(ब्रह्मवनि)** सब मनुष्यों के लिए ब्रह्म=वेद के विभाजक **(क्षत्रवनि)** राजधर्म के प्रकाश के वितरक **(सजातवनि)** सब उत्पन्न हए वेदों एवं क्षात्र धर्म के प्रकाशक. **(त्वा)** आपको **(उपदधामि)** हृदय में धारण करता हूँ वा आपसे पुष्टि को प्राप्त होता हूँ। आपको सर्वव्यापक समझ कर सब **(आशाभ्यः)** दिशाओं से **(उपदधामि)** आपको अपने हृदय में धारण करता हँ वा आप से पष्टि को प्राप्त होता हूँ।

हे मनुष्यो! तुम मुझे इस प्रकार जान कर **(चितः)** चेतन गुण वाले साधारण जनों को **(ऊर्ध्वचितः)** उत्कृष्ट गुण वाले मनुष्य बनाकर **(भृगूणाम्)** दोषों को भस्म करने वाले **(अंगिरसाम्)** प्राणों के **(तपसा)** धर्म एवं विद्या अनुष्ठान रूप तप से **(तप्यध्वम्)** जैसे हो सके वैसे तप करो। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।

सनातन धर्म की समस्याएँ और समाधान

(राम निवास गणग्राहक)

सर्वप्रथम हम सनातनधर्म को समझें कि सनातनधर्म क्या है? काल विभाजन की सुदीर्घ अवधि को लोकव्यवहार की दृष्टि से तीन नामों से जानते हैं। वर्तमान से सम्बन्धित को 'अधुनातन' कहते हैं, सैकड़ों, सहस्रों वर्षों से चली आ रही वस्तु या प्रवृत्ति को 'पुरातन' कहकर पुकारते हैं तथा सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान तक निरन्तर बनी रहने वाली वस्तु को 'सनातन' नाम दिया जाता है। शाब्दिक दृष्टि से सनातन वही हो सकता है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से चला आता हो। अब हम वर्तमान में जिसे सनातनधर्म कहते हैं क्या वह सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है? निःसन्देह हमारा धर्म सनातन धर्म ही है। सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा ने हमें संसार में सुखपूर्वक जीने और वेदोक्त श्रेष्ठ कर्म करके उसकी आनन्दमयी गोद अर्थात् मोक्ष पाने के लिए वेद के रूप में सृष्टि का अटल संविधान दिया था। हमारे पवित्रात्मा ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। परमात्मा द्वारा चार ऋषियों के पवित्र अन्तःकरण से प्रकट किये अपने नित्य वेद ज्ञान पर आधारित होने के कारण हमारा धर्म सही अर्थों में 'सत्य सनातन वैदिक धर्म' ही है। हम कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमारे पास परमात्मा का दिया हुआ पवित्र ज्ञान है। ऐसा पवित्र ज्ञान जो पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। ऐसा पवित्र ज्ञान, जिसे व्यवहार में ढालकर हम संसार के सुख को तथा परमात्मा को भी प्राप्त कर सकते हैं। तनिक विचार करना चाहिए कि यदि परमात्मा हमें अपना और अपनी अनन्त सी दिखने वाली प्रकृति का ज्ञान नहीं देता, तो क्या हम इस विश्व प्रपञ्च का कोई लाभ ले पाते? वा हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों की पहँच से बहत दूर उस परमेश्वर के सच्चे स्वरूप को जान पाते?

कुछ विज्ञानवादी कहते हैं कि मनुष्य ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर परमात्मा का न सही इस संसार का तो हर रहस्य पा ही लेता। मत भूलो कि विज्ञान आज जितनी उन्नति कर रहा है, उसके पीछे परम्परागत रूप से चले आ रहे वेदज्ञान की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है! विज्ञान के हाथ बहुत छोटे हैं, कितने छोटे हैं- प्रख्यात भौतिक शास्त्री डोनाल्ड हेनरी पोर्टर 'लाजवाब सवालों के जवाब' में लिखते हैं- 'भौतिकीशास्त्र में जिन प्रश्नों के सबसे अच्छे उत्तर दिये जाते हैं वे 'कैसे' शब्द से प्रारम्भ होते हैं। भौतिकी शास्त्र में उपलब्धियों का वर्तमान स्तर बहुत से उन प्रश्नों का जो 'क्यों' शब्द से आरम्भ होते हैं, उत्तर नहीं देता। कैसे वाले प्रश्नों के उत्तर शायद सत्य के केवल आसपास होते हैं।" स्पष्ट है कि विज्ञान 'कैसे' शब्द वाले प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयास कर सकता हैं 'क्यों' शब्द वालों का नहीं। यह सृष्टि कैसे बनी? विज्ञान सत्य के आस-पास दिखने वाले उत्तर देने से आगे नहीं बढ़ सकता? क्यों बनीं? का उत्तर माँगो तो विज्ञान के मुँह पर ताला लग जाता है। अब वैदिक धर्म से पूछिये कि यह सृष्टि क्यों बनी? महर्षि पतञ्जलि योग दर्शन में लिखते हैं- भोगापवर्गार्थं दृश्यम् (यो.2.18) यह दृश्यमान जगत् हम जीवों के भोग और अपवर्ग के लिए है। धर्म विज्ञान का बड़ा भाई है, वैदिकधर्म की विशेषता यह है कि वह विज्ञान का मार्गदर्शक है। सोचने वाली बात है कि धर्म का उद्देश्य भी मानव कल्याण है और विज्ञान का भी, तो दोनों में विरोध क्योंकर होगा? देखिए वेद के लिए जहाँ महर्षि मनु- 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (1.96) की घोषणा करते हैं, वहीं वेद सम्पर्ण विज्ञान का भी मल स्रोत है। ऋग्वेद

में आता है- 'जो मनुष्य अंग, उपांग और उपवेदों के साथ वेदों को पढ़कर उनसे प्राप्त हुए विज्ञान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर कलायन्त्रों से सिद्ध होने वाले विमानादि रथों में संयुक्त करके उनको सिद्ध किया करते हैं, वे कभी दुःख और दरिद्रता आदि दोषों को नहीं देखते (अर्थात् भोगते)'- (ऋ.1.20.3) विज्ञान का बौनापन और वैदिक धर्म का स्वरूप जान लेने के बाद अब वैदिकधर्म की समस्याओं पर विचार करेंगे।

सनातन धर्म वही कहलाएगा जो सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर से प्राप्त वेद ज्ञान पर आधारित होगा। चूंकि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान होने से सनातन है। जो वेद में नहीं या वेद विरूद्ध है वह पुरातन तो हो सकता है, सनातन नहीं। वर्तमान सनातनधर्म में जो बातें वेद के अनुकूल हैं, वे सनातन हैं तथा जो वेदविरुद्ध हैं वे पुरातन होने से सनातन धर्म का अंग नहीं हो सकतीं। अब यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वेद पूर्ण परमात्मा का दिया हुआ पूर्ण ज्ञान है। उसमें भूल-चूक की सम्भावना ही नहीं। मनुष्य की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए जितने ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता थी, वह परमात्मा ने वेद के माध्यम से दे दिया। उसमें यदि हम कुछ अपनी तरफ से मिला दें तो भी गलत या कुछ निकाल दें तो भी गलत। दुर्भाग्य से महाभारत के युद्ध के बाद हमारे सत्य सनातन वैदिक धर्म में हमारे कुछ धर्माचार्यों ने अपनी अज्ञानता व स्वार्थ के कारण ऐसा बहुत कुछ जोड़ दिया जो वेद में नहीं था। ऐसे ढेरों ग्रन्थ लम्बे काल तक बनाए जाते रहे जो धीरे-धीरे हमारे सनातन धर्म का अंग मान लिए गए। पाँच हजार वर्ष कम नहीं होते, पाँच हजार वर्षों तक हमारे सनातनधर्म के साथ ऐसा घालमेल चलता रहा। आज स्थिति यह है कि सनातन धर्म के मूल आधार वेद उन नये ग्रन्थों के भण्डार में इतने नीचे दब गए कि वहाँ तक हमारे धार्मिक सज्जनों की पहुँच ही नहीं रही। अब तो ऐसा लगने लगा है, जैसे वेद केवल नाम लेने भर के लिए रह गए हों। वेदों के प्रति हमारी धर्मशील जनता की श्रद्धा तो बहुत है लेकिन एक लम्बे काल तक व्यवहार से दूर रहने के कारण वेदों का पठन-पाठन तो दूर, वेदों के दर्शन भी दुर्लभ हो गए। हमारे धर्माचार्यों ने अपने ग्रन्थों की महिमा इतनी बढ़ा दी कि भोले लोग उन ग्रन्थों को ही धर्मग्रन्थ समझने लगे। इतना ही नहीं इन लोगों ने जो ग्रन्थ लिखे, उन्हें अधिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ऋषि-महर्षियों के नाम से प्रकाशित कराया। महाराज भोज, जो स्वयं संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, उनके राज्य में किसी ने महर्षि व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय पुराण और शिव पुराण नामक ग्रन्थ लिखे थे। राजा भोज को जब इसका पता चला तो उन्होंने इनके लेखकों के हाथ काट दिए। राजा ने घोषणा कराई कि कोई व्यक्ति कोई ग्रन्थ लिखे तो अपने नाम से लिखे। यह विवरण राजा भोज द्वारा लिखित 'संजीवनी' नामक इतिहास ग्रन्थ में मिलता है। महाभारत के सम्बन्ध में भी उस ग्रन्थ में लिखा है कि महर्षि व्यास जी ने महाभारत के 4400 श्लोक लिखे और उनके शिष्यों ने 5600 श्लोक लिखे, कुल मिलाकर महाभारत में 10000 श्लोक थे। महाराज विक्रमादित्य के काल में 20000 हो गए। भोज लिखते हैं कि मेरे पिता के समय में 25000 थे, तथा मेरी आधी आय में महाभारत के श्लोकों की संख्या 30000 है।

यह थोड़ी सी प्रमाणित झलकी प्रस्तुत की है, हमारे सनातनधर्म में होने वाली भयंकर गड़बड़ियों की। इन मिलावटों के कारण हमारा सत्य सनातन धर्म एक चूँ-चूँ का मुरब्बा बनकर रह गया है। हमें कहने और मानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि वेद जैसे पवित्र ईश्वरीय ज्ञान का हमने जो सैकड़ों सहस्रों वर्षों तक घोर अपमान किया है, उसी का दुष्परिणाम है कि विश्व में जितनी दुर्गति हमारे सनातन कहे जाने वाले धर्म की है, उतनी किसी की नहीं। धर्म के नाम पर हमने 5000 वर्षों तक जिन गलत प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है, आज वे ही हमारे विनाश का कारण बन रही हैं। हमारे धर्माचार्यों का जीवन कितना पवित्र रह गया है? हमारे साधओं

की साधुता भाँग, गाँजे, चिलम, तम्बाकू के धुएँ में रंग कर विषैली हो गई है। धर्म के नाम पर फैलते अन्धविश्वासों ने हमारी बुद्धि को सच्चाई स्वीकार करने योग्य नहीं छोड़ा। हमारे धर्मस्थलों की धार्मिकता अखबारों व टी.वी. चैनलों के माध्यम से हम देखते ही रहते हैं। सन्तों के नाचने कूदने वाले धार्मिक समारोह देखकर हमारे सनातन धर्म का गौरव कितना बढ़ जाता होगा। ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के गोरखधन्धे ने हमारे सनातन-धर्म के स्वरूप को अपनी काली करतूतों से कलंकित करने में कोई कमी नहीं रखी। हमें सोचना होगा कि हमारे धर्मस्थलों पर इन काली भेडों का कब्जा कैसे हो गया?

सामान्य जनता की समस्या यह है कि वह पूर्ण रूप से अपने कथित धर्माचार्यों से सुने प्रवचनों व उनके लिखे ग्रन्थों से आगे कुछ नहीं जानती। कुछ पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति कहीं है भी तो तुलसी, शंकराचार्य या महर्षि व्यास की बनाई कही जाने वाली पुराणों से आगे किसी की गति नहीं दिखती। गीता व रामायण तक पहुँच रखने वाले सनातनधर्मी बहुत कम हैं, उनमें जो भी हैं वे शंकराचार्य व उनकी परम्परा के धर्माचार्यों के अनुवाद ही पढ़ते-दिखते हैं। क्या वे यह कहने को तैयार होगें कि हमारा सनातनधर्म शंकराचार्य के आगे का नहीं है। गौतम, कपिल, कणाद, पतञ्जलि ऋषि के पठन पाठन की आवश्यकता कभी किसी को अनुभव नहीं हुई। हमारे सनातनधर्मी धर्माचार्य तक दर्शनों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, गृह्यसूत्रों आदि ऋषि ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन नहीं करते। उनके प्रवचनों-व्याख्यानों में इतिहास की कुछ कल्पित कहानियाँ रोचक और मनोरंजक भाषा शैली में श्रद्धालु जनता के लिए धर्मोपदेश के रूप में परोसी जाती हैं। यह बौनी सोच ही हमारे सनातन धर्म की सबसे बड़ी और विकट समस्या है। धर्मिक जगत् में जितनी भी छोटी-बड़ी समस्याएँ दिखाई देती हैं. वे सब इसी की उपज हैं।

चलते-चलते थोड़ी सी चर्चा धर्म के मूल परमात्मा की भी कर लें। योगदर्शन का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास एक बहुत ही रोचक व बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट करते हैं। योगदर्शन के सूत्र- 'क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः (1.28) का भाष्य करते हुए व्यास लिखते हैं कि परमात्मा में ज्ञान और क्रिया अति श्रेष्ठ है और निरन्तर अति उच्चता को प्राप्त है। ऐसा कहकर वे एक प्रश्न उठाते हैं कि यह श्रेष्ठता व उच्चता किसी निमित्त से है या बिना निमित्त के? इस प्रश्न के उत्तर में व्यास जी कहते हैं- 'तस्य शास्त्रम् निमित्तम्' अर्थात् उसका निमित्त कारण वेद है। वेद के द्वारा ही हम परमात्मा के ज्ञान व क्रिया की श्रेष्ठता व उच्चता को जान सकते हैं। यहाँ एक दूसरा लेकिन बहुत सहजता से उठने वाला प्रश्न है- 'शास्त्रं पुनः किं निमित्तम्' अर्थात् फिर वेद का निमित्त क्या है? इसका उत्तर हम सबके कान और बुद्धि के बन्द द्वार खोलने वाला है। ऋषि लिखते हैं- 'प्रकृष्ट सत्त्व निमित्तम्'- अर्थात् वेद का निमित्त सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि ज्ञान वाला परमात्मा है। यहाँ हमारे लिए सर्वाधिक विचारणीय बात यह है कि महर्षि व्यास वेद को ईश्वर का निमित्त और ईश्वर को वेद का निमित्त घोषित कर रहे हैं। इधर हम यह तो मानते हैं कि वेद परमात्मा का ज्ञान है, ईश्वर ने ही हमें वेद का ज्ञान दिया है। मगर प्रश्न यह है कि क्यों दिया है? हमारे धर्माचार्य धर्म और ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान के लिए वेद को पढ़ने-पढ़ाने व सुनने-सुनाने की आवश्यकता ही नहीं समझते। यही कारण है कि सनातनधर्मी कहलाने वाले कथित हिन्दुओं का परमात्मा भी एक नहीं है। जिस समुदाय का परमात्मा एक नहीं, पूजा-पद्धति एक नहीं वह समुदाय कभी भी, किसी भी मुद्दे पर एक नहीं हो सकता। हमें इन सब बातों पर गम्भीरता से विचार करके, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सनातनधर्म को सच्चे अर्थों में सनातन बनाने के लिए वेद से जोडकर ही देखना/समझना चाहिए।

❑ ❑

हल्दी घाटी के बलिदानी वीर

(राजेशार्य आटटा)

प्रिय पाठकवृन्द! हमारा प्राचीन इतिहास त्याग, वीरता व बलिदान की कहानियों से भरा हुआ है। अलौकिकता का पुट होने से जिन्हें काल्पनिक भी माना जा रहा है, पर उनके नायकों (हरिश्चन्द्र, दधीचि, कर्ण, शिवि, दिलीप आदि) से प्रेरणा पाकर इस देश के वीर-वीरांगनाओं ने बलिदान का वास्तविक इतिहास रचा है। मेवाड़ की साधारण सी महिला पन्ना धाय ने मेवाड़ के वास्तविक अधिकारी की प्राण-रक्षा के लिए अपने जिगर के टुकड़े का बलिदान कर इतिहास में अमर व आदरणीय स्थान प्राप्त किया। महाराणा प्रताप द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए झेला गया भीषण कष्ट 'घास की रोटी खाना' के द्वारा लड़ा गया हल्दी घाटी का संग्राम विश्व के इतिहास में प्रसिद्ध हो गया, पर छद्म धर्म निरपेक्षता की राजनीति ने हमलावरों की महानता (?) को बचाने के लिए हमारे इतिहास के वे गौरवशाली पृष्ठ देश के बच्चों के पाठ्यक्रम में आने ही नहीं दिये। यह अच्छी आजादी आई कि हमारे लिए अपने बलिदानी पर्वजों का नाम लेना भी अपराध हो गया!

इसीलिये कवि को व्याकुल होकर लिखना पडा-

मेरी आँखों में पानी है, सीने में चिंगारी है।
राजनीति ने कुर्बानी के, दिल पर ठोकर मारी है।।

अपने अन्दर कृतज्ञता व वीरता का भाव भरने के लिए आज हम महाराणा प्रताप के सहयोगी रहे हल्दी घाटी के कछ बलिदानी योद्धाओं का पावन स्मरण करते हैं-

कृष्णदास चूण्डावत- इनके पूर्वज मेवाड़ के राणा लाखा (महाराणा कम्भा के दादा) के बेटे चण्ड (चण्डा) थे, जिन्होंने अपने पिता द्वारा मजाक करने के कारण विवाह के लिए आए हुए नारियल को यह कहते हुए ठुकरा दिया था कि जिस कन्या का नारियल मेरे पिता ने अपने लिए आया हुआ कहा है, हँसी में ही सही, वह मेरे लिए माता के समान है। मैं उससे विवाह नहीं कर सकता। और भीष्म की तरह राज्य से अपना अधिकार भी छोड़ दिया था। तब (लगभग 1413 ई.) से मेवाड़ के महाराणा की घोषणा करने का अधिकार चूण्डा के वंशजों को मिला हुआ था। खानवा की लड़ाई (1527 ई.) में महाराणा सांगा के घायल व बेहोश होने पर जब सलूम्बर के राव रतनसिंह चूण्डावत को महाराजा का प्रतिनिधि बनने के लिए कहा गया, तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा- "मेरे बडेरों (पूर्वजों) ने मेवाड़ का सिंहासन छोड़ दिया था। अतः मैं उसे थोड़ी देर के लिए भी स्वीकार नहीं करूँगा, परन्तु जो कोई महाराणा का प्रतिनिधि बनकर उनके हाथी पर सवार होगा, उसकी मैं पूरे उत्साह से सेवा करूँगा और जब तक मेरे शरीर में एक भी रक्त बिन्दु रहेगा, तब तक अपनी सेना में शत्रु को कभी न आने दूंगा।" झाला अज्जा के प्रतिनिधि बनने पर ये वीरता से लड़े और वीरगति को प्राप्त हुए।

इन्हीं के वंशज थे कृष्णदास चूण्डावत और रावत सांगा। प्रताप को अस्त्र-शस्त्र और युद्ध कला की शिक्षा कृष्णदास ने ही दी थी। महाराणा उदयसिंह जब चुपचाप जगमाल को उत्तराधिकारी बनाकर चल बसे, इन्हींने अयोग्य जगमाल को सिंहासन से उतारकार कहा था- 'आपका स्थान यहाँ नहीं, सामने है।' और प्रताप को महाराणा बनाया। हल्दी घाटी के समय (1567 ई.) में

वे अपने पिता खंगार सिंह तथा 16 भाईयों सहित हरावल (आगे) में थे। उनकी मार से मगल सेना बारह मील तक भागती रही।

झाला मान (मन्ना) - इस वीर को बलिदानी पूर्वजों का सच्चा वारिस होने का गौरव प्राप्त था। इसके पूर्वज राजराणा अज्जा ने मेवाड़ के राव चूण्डा (दूसरा भीष्म) की तरह पिता की इच्छा का वीरोचित आदर कर हलवद (काठियावाड़) के राज्य का अपना अधिकार छोड़कर 1506 ई. में मेवाड़ के राणा रायमल की सेवा ग्रहण की थी। बाबर के साथ खानवा की लड़ाई में झाला अज्जा ने अपनी वीरता का सुन्दर प्रदर्शन किया। राणा सांगा के घायल हो जाने और रण-क्षेत्र से दूर ले जाए जाने पर झाला अज्जा ने महाराणा के प्रतिनिध के रूप में सेना का संचालन किया और अन्त में वीरगति पाई। उनके उत्तराधिकारी सिहा ने गुजरात के बहादुर शाह से मेवाड़ की रक्षा करते हुए अपना बलिदान दिया। उनके पुत्र आसा ने बनवीर से युद्ध करते हुए (1540 ई.) उदयसिंह की प्राण-रक्षा कर वीरगति पाई। आसा का पुत्र सुलतान झाला अकबर के विरूद्ध (1568 ई.) मेवाड़ की रक्षा करते हुए जयमल-फत्ता के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। उनका यह पुत्र था झाला मान (बीदा), जिसकी बहन महाराणा प्रताप की रानी चम्पा कँवर थी। यह वीर हल्दी घाटी के मैदान (1576 ई.) में घायल हुए महाराणा प्रताप के राज-चिन्ह धारण कर वीरता से लड़ता हुआ अपना बलिदान देकर इतिहास में अमर हो गया। यह बलिदानी परम्परा यहीं समाप्त नहीं हुई। झालामान के पुत्र देदा राणा अमरसिंह के साथ जहाँगीर की सेना से लड़ता हुआ पूर्वजों के पथ का पथिक बन गया। देदा के उत्तराधिकारी झाला हरदास ने भी वंश परम्परा को निभाते हुए शाहजहाँ से हुए युद्ध (1614 ई.) के समय आत्मोत्सर्ग किया। अपनी वीरता और बलिदानी भावना के कारण ही इन्हें 'राजराणा' की उपाधि प्राप्त थी।

रामसाह तंवर- अकबर द्वारा (बैरम खाँ द्वारा) ग्वालियर जीत लिये जाने के बाद 1557 ई. में ग्वालियर राजा रामसाह (रामसिंह) मेवाड़ में राणा उदयसिंह के पास चले आये। राणा ने इनका बहुत सम्मान किया और अपनी पुत्री का विवाह इनके बड़े बेटे शालिवाहन के साथ कर दिया व मंदसौर की जागीर भी दे दी।

हल्दीघाटी के युद्ध में रामसाह अपने तीनों पुत्रों शालिवाहन, भवानीसिंह तथा प्रताप सिंह व पौत्र बलभद्र के साथ हरावल पर थे। अकबर के इतिहासकार अल्बदायुनी ने आँखों देखा हाल वर्णन करते हुए लिखा है कि ग्वालियर के प्रसिद्ध राजा मान (सिंह) के पोते रामसाह ने ऐसी वीरता दिखाई, जिसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। कुँवर शालिवाहन ने तो अभिमन्यु का सा युद्ध किया। जिस प्रकार अभिमन्यु अनेक महारथियों से घिरकर मारा गया, उसी प्रकार शालिवाहन भी मुगलों से घिरकर धराशायी हुआ। चारों पिता-पुत्र अपनी वीरता के जौहर दिखाकर वीरगति को प्राप्त हुए। इस भीषण संग्राम में केवल घायल हआ बलभद्र ही बच सका।

मानसिंह व भाण सोनगरा- ये दोनों वीर पाली के चौहानवंशी उसी अखैराज (अक्षयराज) सोनगरा के बेटे थे, जिसने बनवीर से बचाकर पन्ना धाय द्वारा सुरक्षित छिपाए हुए उदयसिंह के साथ अपनी बेटी जैवन्ता बाई (राणा प्रताप की माँ) का विवाह कर उसको मान्यता दी व उसकी ताकत बढ़ाई। बनवीर को परास्त कर उदयसिंह को मेवाड़ का राणा बनाने में अखैराज का विशेष योगदान था। उदयसिंह के बाद जगमाल के स्थान पर प्रताप को राणा बनाने में विशेष भमिका मानसिंह व भाण सोनगरा की ही थी।

हल्दीघाटी के युद्ध में इन्होंने अनुपम शौर्य का प्रदर्शन किया। मानसिंह सोनगरा ने राणा प्रताप को सुरक्षित निकाल स्वयं वीरगति पाई। भाण सोनगरा घायल हो गये, पर प्रताप के साथ युद्धभूमि से निकलने में सफल हो गये। बाद में ये कुम्भलगढ़ के किलेदार बने व मुगल सेनापति शाहबाज खाँ से युद्ध के समय वीरगति को प्राप्त हुए। इनका पुत्र जसवन्त सिंह बाद (1576-1585 ई.) के संघर्ष काल में बराबर राणा प्रताप के साथ बना रहा।

रावत नेतसी- इसके दादा रावत जोगा खानवा की लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हुए; पिता रावत नरबद बहादुर शाह से चित्तौड़ की रक्षा करते हुए मारे गये व रावत नेतसी ने हल्दीघाटी की लडाई में वीरगति प्राप्त की।

भील सरदार राणा पूंजा- मेवाड़ के चौदह वर्षों के इतिहास में भीलों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गुहिल वंश के संस्थापक गुहादित्य का जन्म भील समुदाय के बीच गुफा में हुआ था। भीलों के सरदार ने गुहादित्य के माथे पर अपने अंगूठे के रक्त से तिलक कर उन्हें ईडर का मुखिया घोषित किया था। राणा प्रताप का बचपन भी भीलों के साथ खेलने में बीता था। भीलों का उनसे विशेष स्नेह था। राणा ने भील समुदाय की राष्ट्रभक्ति को प्रज्जवलित कर उन्हें स्वातन्त्र्य-युद्ध का अगवा बनाया। अपनी अनुकरणीय राष्ट्रभक्ति से यह भील समुदाय देशवासियों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा हो गया। मेवाड़ के 'राज-चिह्न' में इसीलिए एक ओर राजपत तथा दसरी ओर भील सैनिक का चित्र अंकित है।

हल्दीघाटी युद्ध में भील सैन्य चन्दावल के मोर्चे पर था। उसका नेतृत्व राणा पूंजा कर रहे थे। हल्दी घाटी से गोगन्दा की ओर बढ रही मगल सेना पर छापामार हमले करके राणा पूंजा ने मुगलों की दुर्दशा कर दी। युद्ध के बाद राणा प्रताप की सुरक्षा का दायित्व भी राणा पूंजा ने सम्भाला। पूरे संघर्ष काल में भील राणा के मुख्य सहयोगी रहे। सैनिकों को रदस पहुँचाने, शस्त्र-भण्डार व खजाने की रक्षा से लेकर मुगलों पर छापामार हमलों तक का कार्य राणा पंजा तथा उनके भीलों ने किया।

दानवीर भामाशाह- समाज में तो यही प्रचलित है कि धन की कमी से निराश होकर महाराणा प्रताप ने जब मेवाड़ छोड़ने का निश्चय किया, तो भामाशाह ने अपनी सारी दौलत मातृभूमि की रक्षा के लिए महाराणा के चरणों में अर्पित कर दी। जबकि वास्तविकता यह है कि भामाशाह ने ही नहीं, उसके भाई व पिता ने भी मेवाड़ की रक्षा के लिए केवल धन ही नहीं, तन और मन भी अर्पित किया था। भामाशाह के पिता भारमल राणा सांगा के समय में मेवाड के अधीन रणथम्भोर के किलेदार थे।

अशान्ति के समय दिल्ली रहने लगे। पर राणा उदयसिंह ने इन्हें पुनः मेवाड़ बुलाकर एक लाख की जागीर दे सामन्त बना दिया। धीरे-धीरे वे प्रधान (मंत्री) के पद तक पहुँच गये। बाद में भामाशाह उदयसिंह और प्रताप के समय में प्रधान रहे। भामाशाह का भाई ताराचन्द भी इस समय मेवाड़ की सेवा में था। अकबर के चित्तौड़ पर आक्रमण (1567-68 ई.) के समय मेवाड़ का खजाना हाथियों पर लादकर भामाशाह के साथ बाहर भेज दिया गया था। प्रताप के संघर्ष काल में भामाशाह यही धन महाराणा को उपलब्ध कराते रहे।

हल्दीघाटी के युद्ध में दोनों भाइयों ने भाग लिया। बाद में भी गुजरात, मालपुर आदि के मुगल इलाकों पर आक्रमण व लूटपाट कर राणा प्रताप की सहायता करते रहे। इन्होंने ऐसा ही अभियान मालवा के विरुद्ध किया

व 25 लाख रु. और 20 हजार अशर्फियाँ लूटकर राणा के चरणों में अर्पित कर दीं। इसी त्याग से वे दानवीर प्रसिद्ध हुए, पर निराश राणा द्वारा मेवाड़ त्यागने का विचार करना काल्पनिक है। राणा अमरसिंह के काल में भी भामाशाह तीन वर्ष तक प्रधान रहे। बाद में उनका पुत्र जीवाशाह प्रधान बना।

राठौड़ रामदास- जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के वंश में उत्पन्न वीरमदेव का पुत्र था जयमल्ल। वीरमदेव के भाई रतनसिंह की बेटी मीराबाई का विवाह हुआ था राणा सांगा के बड़े बेटे भोजराज के साथ। खनवा की लड़ाई में दोनों भाइयों ने बाबर के विरूद्ध राणा सांगा का साथ दिया और रतनसिंह वीरगति को प्राप्त हुए। वीरमदेव की मृत्यु (1543 ई.) के बाद जोधपुर के राव मालदेव से परेशान होकर जयमल्ल राणा उदयसिंह के पास मेवाड़ में आ गये। राणा ने 1554 ई. में उन्हें बदनौर का पट्टा दे दिया। अकबर द्वारा मेड़ता छीन लिये जाने पर जयमल्ल मेवाड़ में ही रहने लगे। अकबर के चित्तौड़ आक्रमण के समय राणा उदयसिंह ने इसी राठौड़ वीर जयमल्ल के कंधों पर चित्तौड़ की रक्षा का भार डाला। उस समय उस वीर ने जो वीरता दिखाई वह लोक कथाओं और लोकगीतों में आज तक प्रचलित है। अपनी वीरता के जौहर से अकबर को भी प्रभावित करने वाले इस वीर ने चित्तौड़ की रक्षा के लिए अपने अनित्य शरीर का बलिदान कर नित्य यश अर्जित किया। इसीलिए यह राजस्थान में लोकदेवता के रूप में पूजा जाता है। उसी वीर पिता के वीर पुत्र राठौड़ रामदास ने हल्दीघाटी के मैदान में वीरता के जौहर दिखाते हुए शहादत का जाम पिया।

हकीम खाँ सूरी- यह वीर शेरशाह सूरी का वंशज था, जो अकबर को विदेशी आक्रमणकारी मानकर मातृभूमि की रक्षा के लिए राणा उदयसिंह के अंतिम समय में मेवाड़ की सेना में सम्मिलित हुआ और हल्दीघाटी युद्ध के समय प्रमुख सेनापतियों में जिसकी गिनती होती थी। युद्ध के समय यह सबसे अग्रिम मोर्चे पर था। आठ सौ अफगान घुड़सवारों के साथ इसने हल्दी घाटी से निकलकर तेज गति से मुगलों पर आक्रमण किया। इससे मुगल सेना के अग्रिम मोर्चे में भगदड़ मच गई। युद्ध में जब प्रताप चारों ओर से घिर गये, तो हकीम खाँ सैयदों से लड़ना छोड़ महाराणा के बचाव के लिए आ गये। महाराणा को सुरक्षित निकालने के बाद झालामान के साथ मिलकर हकीम खाँ ने वीरता से मगल सेना से टक्कर लेते हुए वीरगति पाई।

चेतक- यह पशु होते हुए भी मानव की तरह इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। यह सामान्य घोड़ा नहीं था, यह तो राणा प्रताप का जीवन-मरण का साथी था। राणा को कभी इसे एड़ लगाने की जरूरत नहीं पड़ी। अपने स्वामी के मन की बात को यह भली भाँति समझ लेता था। हल्दीघाटी (खमनौर) में जिस बिजली की सी गति से राणा की तलवार चल रही थी, उसी तेजी से चेतक पूरे रणक्षेत्र में घूम रहा था। मानसिंह के हाथी को देखते ही चेतक ने उछाल मारकर दोनों अगले पैर हाथी के मस्तक पर टिका दिये। किन्तु हाथी की सूंड में बँधी तलवार से उसके पैर में घाव हो गया। उसके बाद भी उसकी गति रूकी नहीं। झालामान द्वारा राणा प्रताप के राजकीय छत्र धारण करने तक चेतक घायल राणा को लेकर लोसिंग की ओर उड़ चला। रास्ते में आए नाले को पार करते ही वह भूमि पर गिर पड़ा और आँखों में पानी भरकर राणा की ओर देखते हुए सदा के लिए आँखें मँद लीं। अपने प्राण-प्रिय साथी को खो

देने के बाद राणा प्रताप कितना रोये होंगे, इसका साक्षी तो वह नाला ही है। कवि श्याम नारायण पाण्डेय ने उस समय का चित्र खींचते हुए लिखा है-

तब तक चेतक कर चित्कार. गिरा धरा पर देह बिसार।
लगा लोटने बारम्बार. बहने लगी रक्त की धार।।
बरछे असि भाले गम्भीर. तन में लगे हुए थे तीर।
जर्जर उसका सकल शरीर. चेतक था व्रण-व्यथित अधीर।।
करता घावों पर दृग-कोर. कभी मचाता दुःख से शोर।
कभी देखता राणा की ओर. रो देता. हो प्रेम विभोर।।
लोट-लोट सह व्यथा महान. यश का फहरा अमर-निशान।
राणा गोदी में रख शीश. चेतक ने कर दिया पयान।।
गहरी दुःख की घटा नवीन. राणा बना विकल बलहीन।
लगा तडफने बारम्बार. जैसे जल-वियोग से मीन।।
हा चेतक! तू पलकें खोल. कुछ तो उठकर मुझसे बोल।
मझको तू न बना असहाय. मत बन मुझसे निठुर अबोल।।
मिला बन्धु जो खोकर काल. तो तेरा चेतक. यह हाल!
हा चेतक. हा चेतक. हाय. कहकर चिपक गया तत्काल।।
अभी न तू मुझसे मुख मोड. तू न इस तरह नाता तोड।
इस भवसागर बीच अपार. दुःख सहने के लिए न छोड।।
बैरी को देना परिताप. गज-मस्तक पर तेरी टाप।
फिर यह तेरी निद्रा देख. विष सा चढता है संताप।।
हाय. पतन में तेरा पात. क्षत पर कठिन लवण-आघात।
हा. उठ जा. तू मेरे बन्धु. पल-पल बढती आती रात।।
चला गया गज रामप्रसाद. तू भी चला बना आजाद।
हा. मेरा अब राजस्थान. दिन पर दिन होगा बरबाद।।
किस पर देश करे अभिमान. किस पर छाती हो उत्तान।
भाला मौन. मौन असि-म्यान. इस पर कुछ तो तू कर ध्यान।।
लेकर क्या होगा अब राज. क्या मेरे जीवन का काज?
पाठक! त भी रो दे आज. रोता है भारत-सिर ताज!!

इति

❑ ❑

स्वयं विषपान कर संसार को अमृत पिलाने वाला अनोखा ऋषि दयानन्द सरस्वती

- मनमोहन कमार आर्य. देहरादन

महर्षि दयानन्द का शिवरात्रि से गहरा ऐतिहासिक सम्बन्ध है। शिवरात्रि के व्रत ने ही बालक मूलशंकर को सच्चे शिव अर्थात् सृष्टि के रचयिता ईश्वर की खोज करने की प्रेरणा की। घर व परिवारजनों के बीच रहकर वह अपना अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते थे। इसके लिए उन्हें ऐसे विद्वानों, आचार्यों, व्याकरणाचार्यों, योगियों, चिन्तकों, मनीषियों तथा वेदज्ञों की संगति, उनके प्रशिक्षण व मार्गदर्शन की आवश्यकता थी, जो उनकी शंकाओं को समझकर उन्हें दूर कर सकें। अतः घर छोड़ने का कठिन निर्णय उन्होंने लिया। सन् 1842 ई. से स्वामी दयानन्द की बालक मूलशंकर के रूप में सच्चे शिव की खोज आरम्भ होती है। इस कार्य के लिए उनका मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं है। उन्होंने अपना उद्देश्य निर्धारित कर लिया और उसको प्राप्त करने की योजना की रूपरेखा उन्हें स्वयं ही बनानी है। उनका पहला कार्य यह था कि वह परिवारजनों से दूर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाये जहाँ वह निश्चिन्तता से अपने मार्ग पर आगे बढ़ सकें। अपने परिवारजनों से दूर रहकर वह ज्ञानी व योगियों की संगति से अपनी सभी शंकाओं का समाधान कर सच्चे शिव व सृष्टिकर्ता ईश्वर को जान कर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लें। साथ ही मुक्ति की प्राप्ति के उपायों को जान कर उसके अनुरूप साधना कर कृतकार्य हो सकें। उनके जीवन के अध्येता व अनुयायी यह भली प्रकार जानते हैं कि वह अपनी खोज में सफल रहे। उनको खोज से वह स्वयं अकेले ही लाभान्वित नहीं हुए अपितु उससे समूचे भारतीय समाज के साथ सारा विश्व भी लाभान्वित एवं प्रभावित हुआ। 27 फरवरी, 2014 को आ रही शिवरात्रि व उससे 4 दिन पूर्व उनका जन्म दिवस है। यह दो दिन भारतीय विश्व के इतिहास के दो गरिमापूर्ण एवं महनीय दिवस हैं। इनकी महत्ता इस कारण है कि सूर्यास्त उत्पन्न अन्धकार की भांति महाभारत युद्ध के पश्चात् वेद व आर्ष ज्ञान के विलुप्त होने पर भारत व विश्व के लोग नाना प्रकार के अन्धविश्वासों, पाखण्डों, कुरीतियों में फंस गये थे। लगभग 5000 वर्ष तक वेद व आर्ष ज्ञान प्रायः विलुप्त रहा। महर्षि दयानन्द ने अपने अपूर्व तप, ज्ञान, जिजिविषा व योग बल से उस विलुप्त ज्ञान को प्राप्त किया और उसे मानव मात्र को सुलभ कराया। इस कारण वह सृष्टि के इतिहास में सर्वोपरि स्थान को प्राप्त हुए। महाभारत के पश्चात् व महर्षि दयानन्द के आविर्भाव से पूर्व यह हुआ कि संसार के लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप को भूल गये थे। सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को पाकर भी उसका लक्ष्य प्राप्त करने के स्थान पर पहले से भी अधिक पतित होते जा रहे थे। पतन की चरम सीमा तक पहुँच जाने की अवस्था के कारणों पर विचार कर उसके निवारणार्थ ज्ञान व विद्या प्राप्त कर दुःखों से मुक्त होकर मोक्ष व अपवर्ग प्राप्ति तक का चिन्तन करने में संसार के लोग सर्वथा असमर्थ थे। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ और उन्होंने हर बात का समाधान किया जिससे उनके समय व बाद का सारा संसार उनका कतज्ञ है।

शिवरात्रि के इस दिन हम आर्य समाज के मन्दिरों में जाकर वहाँ वेदों के विद्वानों के सान्निध्य में आत्मा, परमात्मा व सृष्टि के उपभोग से जुड़े प्रश्नों पर सारगर्भित प्रवचन व उपदेश सनकर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त होते हैं।

प्रवचनों व अपने दैनन्दिन स्वाध्याय से मन में समुद्र की तरंगों की भांति समय-समय पर उठने वाले सत्य संकल्पों को जीवन में धारण कर ईश्वर-साक्षात्कार की स्थिति तक पहुँचने में अग्रसर व सफल हों, यही इस दिवस को मनाने की सार्थकता है। यदि इस दिन अवकाश करके केवल अन्न ग्रहण न कर उपवास रखने, शिव के काल्पनिक चित्र, मूर्ति व कथा को स्मरण कर व पौराणिक रीत्यानुसार शिव की स्तुति व आरती आदि करके शिवरात्रि व ऋषि बोध दिवस को मनाते हैं तो हम कहेंगे कि हमारे ऐसे भाईयों व बहिनों को शिवरात्रि मनाना ही नहीं आता। वह अन्धकार में पड़े होने पर भी यह अनुभव ही नहीं कर पा रहे हैं कि वह अन्धकार से ग्रसित हैं। अज्ञान के अन्धकार से ग्रसित व्यक्ति को यदि अपने स्वरूप व स्थिति का यथार्थ ज्ञान न हो तो फिर उसका कल्याण होना कठिन वा असम्भव होता है। ऐसी ही कुछ स्थिति पौराणिक विधियों से शिवरात्रि मनाने वाले हमारे भाईयों की है और साथ में अन्य मतावलम्बी भी इन्हीं पौराणिक भाईयों की तरह अन्धकार से आवृत अपने पुराने संस्कारों की कमाई, प्रारब्ध को भोग कर सुख अनुभव कर रहे हैं जिससे उनके प्रारब्ध व पुण्यकर्म घट रहे हैं और आगे के लिए जमा-पूंजी-रूपी-प्रारब्ध के न बचने के कारण उनके लिए हानि, दुःख, चिन्ता, निराशा. रोग व क्लेश आदि की स्थिति बन रही है।

लगभग 2500 वर्ष पूर्व बौद्ध व जैन मत का प्रादुर्भाव प्रायः कुछ अन्तराल के आस-पास हुआ और मूर्तिपूजा इन्हीं के द्वारा न केवल भारत में अपितु संसार भर में प्रचलित हुई। इससे पूर्व भारतवर्ष व विश्व में कहीं भी मूर्तिपूजा किये जाने के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वेद नाम से प्रसिद्ध चार मन्त्र संहितायें ईश्वरीय ज्ञान हैं जिनकी मान्यताओं व सिद्धान्तों से मूर्तिपूजा अर्थात् ईश्वर के स्थान पर पाषाण व धातु आदि की मूर्ति को ईश्वर मानकर पजा करने का खण्डन होता है। यह कत्य ऐसा ही है जैसे कि माता-पिता घर में विद्यमान हैं, उनका पुत्र उनकी अनदेखी करके उनके चित्र पर पुष्प माला व पुष्प, फल, जल, अन्न आदि भेंट कर रहा है या उनके नाम पर पुजारियों को अन्न व धन दान दे रहा है। माता-पिता यह देख कर चिन्तित व दुःखी हो रहे हैं परन्तु वह पुत्र उनकी भावनाओं व इच्छाओं पर ध्यान नहीं दे रहा है। पुत्र की भांति ऐसी ही स्थिति मूर्तिपूजा करने वालों की है जिनसे सच्चा ईश्वर कुपित है। शिव-पूजा के सन्दर्भ में लगता है कि बौद्धों व जैनियों से प्रभावित होकर हमारे अल्पज्ञानी या अज्ञानी व कुछ-कुछ स्वार्थ से प्रेरित लोगों ने ऐतिहासिक महान् पुरूष भगवान शिव की उपासना व पूजा आरम्भ की होगी। उनकी पूजा आरम्भ करने से पहले भक्तों व उपासकों को शिव-उपासना का महात्म्य भी बताना था। इसके लिए उन्होंने शिव पुराण जैसे ग्रन्थ की रचना की। शिव पुराण ही नहीं अपितु सभी पुराणों के वर्णन अविश्वसनीय हैं जिन्हें व्यवहार में घटा कर देखने पर वह सत्य सिद्ध नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ऐतिहासिक शिव हुए थे जो बहुत बड़े धर्मात्मा, योगी, व्याकरणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, संगीत, नृत्याचार्य एवं अनेक विद्याओं में पारंगत थे। इसका सप्रमाण वर्णन पं. युधिष्ठि मीमांसक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास'** में किया है। जब वैदिक धर्म का ह्रास हो चुका या हो रहा था तब नास्तिक बौद्ध व जैन मतों से रक्षा के लिए सम्भवतः समयानुसार यह पौराणिक शिव उपासना आरम्भ की गई थी। जिन लोगों ने यह पद्धति आरम्भ की, वे अपने समय के बहुत बड़े तथाकथित विद्वान् रहे होंगे। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता वहाँ अरण्ड के वृक्ष को ही वट-वृक्ष माना जाता है। परिस्थितियों के अनसार ऐसा होना स्वाभाविक व व्यवहारिक होता है।

इसी प्रकार से पुराणों के निर्माण काल में वेदज्ञ विद्वानों के न रहने पर जो संस्कत जानने वाले व ग्रन्थ

रचना में समर्थ व्यक्ति थे, परन्तु जो वेदों के सिद्धान्तों से या तो अनभिज्ञ थे या फिर कुछ अज्ञान व स्वार्थ जिनमें था, उन्होंने सत्य मार्ग पकड़ने के स्थान पर अपना नया मत या नया पुराण बना डाला और अन्यों की निन्दा व अपने मत व पुराण की स्तुति की। विद्वानों के अनुसार ऐसा ही वर्णन सभी पुराणों में मिलता है जो यथार्थ न होकर काल्पनिक होने से अविश्वसनीय या त्याज्य है। यहाँ हम एक उदाहरण देना चाहते हैं। हमारे एक पौराणिक मित्र श्री चन्द्र दत्त शर्मा, फलित ज्योतिषविद्, उनके पिता श्री अमन सिंह शर्मा, माताजी, पत्नी, पुत्र हिमांशु व दो पुत्रियां लगभग 30 वर्ष पूर्व शिवरात्रि के दिन दूरदर्शन पर शिवरात्रि कार्यक्रम देख रहे थे। श्री शर्मा शिक्षा काल में ही आर्य समाज के सम्पर्क में आये परन्तु रहे अधिकांशतः पौराणिक व कुछ थोड़े आर्यसमाजी। उनका परिवार पौराणिक व आर्यसमाज के विचारों का मिश्रित रूप था। उनके पिता श्री अमन सिंह शर्मा भी प्रमुख फलित ज्योतिषविदों में थे। शिवलिंग की पूजा का दृश्य दिखाये जाने पर सब घर वालों ने हाथ जोड़ कर अपनी श्रद्धा व भक्ति का परिचय दिया परन्तु पुत्र हिमांशु ने न तो सिर ही झुकाया और न हाथ ही जोड़े। दादाजी द्वारा हाथ जोड़ने के लिए कहने पर उसने कहा- "मैं हाथ क्यों जोड़ूँ, यह कोई भगवान थोड़ी है, यह तो पत्थर है।' शर्माजी ने इस घटना का पूरा विवरण बाद में मिलने पर हमें बताया। अब यह बालक बड़ा हो गया है तथा पढ़ लिख कर समृद्ध व सम्मानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं और विचारों से प्रायः पौराणिक ही है। मूर्तिपूजा की एक शिक्षाप्रद घटना आर्यसमाज के विद्वान् गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर से जोड़कर सुनाते हैं। एक बार बहुत दूर से आये एक ग्रामीण वृद्ध बन्धु ने शिवरात्रि के दिन सोमनाथ मन्दिर में पूजा-अर्चना की और बाहर न जाकर हाथ जोड़कर श्रद्धान्वत वहीं खड़ा रहा। उस दिन वहाँ भीड़ अधिक होने व अव्यवस्था की आशंका के कारण पजारी द्वारा उसे डांटने पर उसने कहा कि **'वह बहुत दूर से आया है, उसे खड़ा रहने दें। शायद भगवान उसे दर्शन दे दें।'** यह सुनकर पुजारी क्रोधित होकर बोला कि **'हमें व हमारे पूर्वजों को वर्षों यहाँ पूजा कराते हो गये, हमें तो आज तक दर्शन दिये नहीं, तुझे क्या दर्शन देंगे?'** हमारा अनुमान है कि आज तक किसी मूर्तिपूजक को ईश्वर के साक्षात् दर्शन या साक्षात्कार नहीं हुआ है। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यदि किसी को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ हो तो वह योग साधना आदि कर्मों व साधनों से ही हुआ होगा। अतः मूर्तिपूजा निरर्थक सिद्ध होती है, निरर्थक इसलिए कि इससे उपासना व पूजा का मुख्य उद्देश्य **"ईश्वर का साक्षात्कार"** पूरा नहीं होता और उपासना से जो ईश्वरीय गुण, सदाचार अर्थात् आचरण की पूर्ण पवित्रता व शुद्धता, परोपकारिता, दया, करूणा, धैर्य आदि उपासक में आने चाहिये, उसके स्थान पर बुद्धि की जड़ता-मलिनता-अपवित्रता, सत्य का चिन्तन व विचार करने में असमर्थता, सत्य को स्वीकार न करना आदि जैसे गुण-अवगुण उपासक में आते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती घर से निकलकर योगियों, संन्यासियों, विद्वानों की खोज करते हुए तथा उन्हें जो मिलता उससे योग व उपासना के साधन सीखते हुए आगे चलकर मथुरा के प्रज्ञाचक्षु स्वामी गुरू विरजानन्द सरस्वती के अन्तेवासी शिष्य बने। लगभग 3 वर्षों में उन्होंने उनसे आर्ष व्याकरण व आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन पूरा किया। व्याकरण पढ़कर वह वेद व इतर वैदिक आर्ष ग्रन्थों के आशय, उद्देश्य, उनमें निहित सत्य व अन्यान्य विषयों को समझने की योग्यता उन्होंने प्राप्त की। यह जान गये कि मूर्तिपूजा, अवतारवाद, विभिन्न पौराणिक व्रतोपवास आदि अनार्ष व वेदविरूद्ध अनुष्ठान से किसी आध्यात्मिक लाभ या लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती। **इसके स्थान पर योग दर्शन के अनुसार साधना करने से ईश्वर का साक्षात्कार होता है।** बुद्धि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती है। ईश्वर, जीवात्मा

व प्रकृति के अनेक रहस्यों का बोध होता है। ईश्वर साक्षात्कार की अवस्था आने पर सभी आत्मिक, मानसिक, बौद्धिक व शारीरिक क्लेशों से मुक्ति मिलती है। ध्यान व समाधि में ईश्वर के सान्निध्य से आत्मा आनन्द की अनुभूति करता है। जिस प्रकार शीतल जल से स्नान करने पर शरीर की ऊष्णता समाप्त होती है, इसी प्रकार समाधि में ईश्वर से संयोग होने पर सभी दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःख दूर होकर आनन्द की प्राप्ति व ईश्वर के स्वरूप में एकाग्रता आती है। यही कारण है कि **सृष्टि के आरम्भ से आज तक सभी ज्ञानी व योगी मनुष्य विरक्त होकर ध्यान व समाधि द्वारा ईश्वरोपासना, जिसमें स्तुति व प्रार्थना भी सम्मिलित है, करते आये हैं। क्या यह सम्भव है कि जीवन भर स्तुति, प्रार्थना व उपासना के करने से यदि उन्हें इष्ट लक्ष्य, ईश्वर साक्षात्कार, दुःखों की निवृत्ति व आनन्द की प्राप्ति, न होती तो वह ईश्वर की उपासना का उपदेश करते, विविध ग्रन्थों की रचना कर इनके पक्ष में प्रमाण देते और उपनिषद् जैसे उच्च आध्यात्मिक ग्रन्थों की भी रचना करते?** विवेचना से यह सिद्ध है कि समाधि सिद्ध होने पर प्राप्त होने वाले लाभों का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था व समाधि की उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुई थीं। **यही कारण है कि स्वामीजी ने गुरू विरजानन्द की कुटिया से विदा लेने पर एक वर्ष से अधिक आगरा में निवास किया व अपनी पहली पुस्तक सन्ध्या ईश्वरोपसाना पर ही लिखी।** सन्ध्या क्या है, हमारे लिए सृष्टि की रचना करने व हमें मानव जन्म देने के लिए ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए की जाने वाली स्तुति, प्रार्थना व उपासना की विधि है जिसके सिद्ध होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। उन्होंने सन्ध्या में लिखा है **'हे ईश्वर दयानिधे, भवत्कृपया, अनेन जपोपासनादि-कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणाम् सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।'** यह वाक्य और किसी पर चरितार्थ हो या न हो, परन्त महर्षि दयानन्द पर पूर्णतः चरितार्थ हुआ था। हमें प्रतीत होता है कि यहाँ काम से अभिप्रायः समाधि में प्राप्त होने वाले ईश्वर के आनन्द से है और मोक्ष का अर्थ पूर्ण दुःखों की निवृत्ति है। इसके साथ ही मोक्ष का अर्थ जन्म-मरण से छूटना भी है जो कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें प्राप्त हुआ होगा, ऐसा अनुमान से कह सकते हैं। सन्ध्या का वैदिक जीवन पद्धति में शीर्षस्थ स्थान है। अन्य सभी कर्तव्य व कर्मकाण्ड सन्ध्या के परक है। **सन्ध्याविहीन मनुष्य की नास्तिक संज्ञा है।**

स्वामी दयानन्द जब अपने गुरू विरजानन्द की कुटिया से निकले तो उनके सामने संसार में आर्ष ज्ञान को प्रतिष्ठित करने का महान् लक्ष्य व कार्य था। इसके लिए उन्होंने आगरा में एक वर्ष से अधिक अवधि तक रहकर अपनी योजना तैयार की। उन दिनों की परिस्थितियों के अनुसार इसके लिए उन्होंने मौखिक उपदेश, वार्तालाप, विचार-विनिमय, शंका समाधान, शास्त्रार्थ व शास्त्र-चर्चा तथा ग्रन्थ लेखन को अपना साधन बनाया। आगरा से आरम्भ होकर जोधपुर में प्रचार करने व मृत्यु तक वह इन्हीं साधनों का भरपूर उपयोग करते रहे। उनके कार्यों में विरोधियों, पौराणिकों, विधर्मियों, विदेशी शासकों ने कठिनाईयाँ पैदा कीं। **लगभग 17 बार उन्हें विष देकर उनकी जीवन लीला समाप्त करने का भी प्रयास किया गया परन्तु वह अपने जीवन की अन्तिम श्वांस तक डटे रहे और अविद्या व अज्ञान का नाश तथा विद्या की वृद्धि करने के लिए दढता से वेदों का प्रचार करते रहे।**

महर्षि दयानन्द को उनके बोध दिवस व शिवरात्रि पर हमारी यह शब्दमय श्रद्धांजलि प्रस्तुत है। हम उनके स्वप्नों के साकार होने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ईश्वर उपासकों की पुरुषार्थ से पूर्ण सच्ची प्रार्थनाएँ स्वीकार करता है. शायद यह प्रार्थना भी कर लें।

❑ ❑

पष्ठ 2 का शेष

पाठकों की जानकारी के लिए 'आर्ष साहित्य प्रचार टस्ट' द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश की मूल्य सूची प्रस्तुत है।

1. प्रचार संस्करण (अजिल्द) **23×36/16**

मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु. (प्रचारार्थ मल्य पर कोई कमीशन नहीं)

2. विशेष संस्करण (सजिल्द) **23×36/16**

मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु. (प्रचारार्थ मल्य पर कोई कमीशन नहीं)

3. स्थूलाक्षर (सजिल्द) **20×30/8**

मद्रित मल्य 150 रु. (प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन)

अधिक प्रतियाँ लेने पर अतिरिक्त कमीशन

यहां मैं यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ कि ट्रस्ट जिस सत्यार्थ प्रकाश को 98 रु० और अधिकतम 120 रु० में बेचता है, उससे इनके सत्यार्थ प्रकाश की तुलना सर्वथा नहीं की जा सकती। चाहे तो कोई भी इन दोनों को सामने रख कर देख सकता है, स्वयं उक्त प्रकाशक भी, और हमारा विश्वास है कि इन्हें भ्रम फैलाने पर खेद अवश्य होगा और अपने लिखे पर लज्जा का भी अनुभव होगा।

छोटी छपाई की बात में भी कोई दम नहीं है क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश छोटे-मोटे दोनों अक्षरों में उपलब्ध है।

जहाँ तक एकरूपता का प्रश्न है तो मैं जानना चाहता हँ कि इसके लिए उन्होंने क्या किया है. कर रहे हैं अथवा क्या करेंगे?

यहाँ मैं 'ट्रस्ट' के यशस्वी प्रधान श्री धर्मपाल आर्य की नाराजगी लेकर भी उनके द्वारा विद्वानों के समक्ष रखे एक प्रस्ताव को पाठकों के साथ साझा करना चाहता हूँ। श्री आर्य ने निवेदन किया था कि सभी विद्वान् सत्यार्थ प्रकाश के 1-1 शब्द पर गम्भीरता से विचार करने के लिए बैठें और गम्भीर स्वाध्याय करें। महाभाष्यकार के शब्दों में यदि महर्षि कृत वाक्यों में आपको कुछ भी सन्देह हो तो आप उन पर गम्भीर चिन्तन-मनन करें। चाहे इसमें कितना भी समय लगे। सीडी बनवाने तक का समस्त व्यय 'ट्रस्ट' वहन करेगा और सभी प्रकाशक इसे छाप सकेंगे। उद्देश्य केवल एकरूपता लाने का है। अब कोई मझे बताए कि इससे अधिक कोई और क्या कर सकता है।

हम विनम्रता के साथ निवेदन करना चाहते हैं कि जब तक 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' विद्यमान है, तब तक सत्यार्थ प्रकाश की अनुपलब्धता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। 'ट्रस्ट' सत्यार्थ प्रकाश लागत से भी कम मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध है और प्रतिबद्ध है और हम इसमें पूरी ईमानदारी से संलग्न हैं। लेकिन मुझे स्पष्ट है कि कुछ लोग सत्यार्थ प्रकाश के नाम पर गटबाजी की गंदी राजनीति और केवल राजनीति कर रहे हैं।

दिनेश कमार शास्त्री